पूर्णं येन सुमेरु शृंग सदृश चैत्य मुदे दीप्यते,
य कीर्ति यजमान धर्म कथन प्रस्फूर्जिना भाषते।
यं ये स्पर्धां कुरुते जगत्त्रय महा दीप्तिन दीपारिणा,
सोऽय मगल रूप मुख्य गणन कुम्भश्चिर नन्दतात् ॥ १ ॥



हिंगुल प्रकरण व सिंदूर प्रकरण

(हिन्दी अर्थ सहित)

श्लोक रचयिता
श्री विनयसागर उपाध्यायजी
श्री खरतरगच्छीय ज्ञान मन्दिर, जयपुर



सशोधन एव परामर्शदाता
मागीलाल व्यास 'मयक'



पुस्तक प्राप्ति स्थान



श्री हित सत्क ज्ञान मन्दिर

मु० पो० घाणेराव (मारवाड़)



गोविन्दचन्द मेहता

गृहपति :

श्री श्वेताम्बर जैन छात्रावास

मु० पो० गुढाबालोतान

स्टेशन :- जवाईबांध (राज.)





नारोडाजी तीर्थोद्धारक परम पूज्य १००८ श्री आचार्यविजय



हिमाचल सुरीश्वरजी महाराज साहेब

जन्म वि सं १९६४   दीक्षा वि सं १९८०
पंन्यास वि० सं १९८५   आचार्य वि सं २००१

दो शब्द

यह अत्यन्त ही हर्ष की बात है कि मेवाड केसरी, नाकोड़ा तिर्थोद्धारक-व्याख्यान वाचस्पति पू० आचार्य श्री हिमाचलसूरीश्वरजी महाराज. सा. की आज्ञावर्ति पू० साध्वीजी महाराज श्री पुण्य श्री जी की विदुषी शिष्या पू० साध्वीजी श्री उद्योत श्रीजी महाराज सा. ने ज्ञान पिपासु श्रद्धानुओं के लिये हिंगुल प्रकरण एवं सिंदूर प्रकरण के हिन्दी अनुवाद को सरल भाषा में अमृत कुंभ नामक पुस्तक छपवाकर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

ज्ञान ही मुक्ति का साधन है। इस दृष्टि से ऐसी पुस्तकों के सरल अनुवाद एवं व्याख्या अत्यन्त ही उपयोगी हैं। साध्वीजी श्री का प्रयास स्तुत्य है।

आप श्री ने और भी अनेक पुस्तकें प्रकाशित करवाई हैं। इन पुस्तको की सरल भाषा में व्याख्याएं यह प्रमाणित करती हैं कि साध्वीजी श्री की साहित्यिक रुचि भी सराहनीय है। जैन धर्म के सिद्धान्तों को सरल भाषा में प्रस्तुत करवाना आज के युग की मांग है। प्रभु-महावीर के सिद्धान्तों का प्रचार जनता मे करना नितान्त आवश्यक है।

इस दिशा में साध्वीजी श्री का प्रयास उपयोगी ही नहीं अपितु सराहनीय है।

मैं साध्वीजी श्री को इस सफल पुस्तक प्रकाशन के लिये हार्दिक बधाई देता हूँ।

आपका शुभ चिन्तक
गोविन्दचन्द मेहता
गृहपति

पुज्य पुन्यश्रीजी महाराज साहेब



जन्म तनादरी (मेवाड)
दीक्षा दुजाणा (मारवाड)

॥ श्री ॥

दानदाताओं की सूचि

---

५०१) जन श्री सघ सरथ (बडी टुकडी)

१०१) ,, ,, (छोटी टुकडी)

१०१) श्रीमान तिलोकचन्दजी साहब जन सरथ

१०१) ,, बाबूलालजी चुन्नीलालजी मेगलोर

१०१) , भैरवमलजी मगलजी जाकोर

१०१) , त्रिलोकचन्दजी की बहिन

५१) , बाबूलालजी जालोर

५१) गुडा उपासरा की बहनो की तरफ से

धन्यवाद !

जिन महानुभावो ने इस पुस्तक के प्रकाशन मे आर्थिक सहायता प्रदान की है उसके लिये वे बधाई के पात्र है। ज्ञान ही मुक्ति का साधन है। पुस्तके ज्ञान के दीपक हैं। ऐसे पुनीत कार्य में जिन महानुभावों ने आर्थिक सहायता दी है वह प्रशसनीय है। उन्हें हार्दिक धन्यवाद !

पुज्य उद्योतश्रीजी महाराज साहेब



जन्म वि स १९८८ — अहमदाबाद

दीक्षा वि स २००६ — भाणपुरा (मेवाड)

॥ ॐ ह्रीं अर्हं नमः ॥

श्री हिंगुल प्रकरण

श्री मत्श्री वासुपूज्यश्च, जगदानंददायकः ।
कल्पवृक्षोपमोभूया-त्सुखस्य ततिसिद्धये ॥ १ ॥

अर्थ—जगत को आनन्द देने वाले तथा कल्पवृक्ष के समान ऐसे श्री वासुपूज्य प्रभु सुख की सिद्धि को देने वाले बने ॥ १ ॥

हिंगुल प्रकरोऽय च, वालारुणो विचक्षणा ।
तर्कयतीति य दृष्ट्वा, पदमप्रभो मुदेऽस्तु मः ॥२॥

अर्थ—जिनको देखने से यह हिंगुल के समूह है तथा उदित होता हुआ सूर्य है, इस प्रकार पण्डित तर्क करते हैं ऐसे श्री पदम् प्रभु हर्ष के लिए बने ॥ २ ॥

जनयंति यथा पुत्रान्, भाग्य स्वोपार्जित यथा ।
ग्रंथान् कुर्वंति विद्वांसो, गुणाद्विस्तरता भवेत् ॥ ३ ॥

अर्थ—स्त्रियां पुत्रों को जन्म देती है, किन्तु उनका जैसा भाग्य (कर्म) होता है, उसी प्रकार विद्वान ग्रंथ बनाते हैं किन्तु उनमें रहे हुए गुणों से ही उनका विस्तार होता है ॥३॥

कुपात्रे दीयते विद्या, कुपात्रे दीयते कन्यका ।
सुपात्रे दीयते लक्ष्मीः, कुपात्रे दीयते दाम ॥ ४ ॥

अर्थ—कुपात्र को दी हुई विद्या, कुपात्र को दी हुई कन्या, कुपात्र के साथ की हुई मित्रता, तथा कुपात्र को दिया हुआ धन नाश को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

कुपात्रेऽनर्थकृद्विद्या, कुपात्रेऽनर्थकृत्कला ।
कुपात्रेऽनर्थकृन्मैत्री, कुपात्रेऽनर्थकृद्धनम् ॥ ५ ॥

अर्थ—कुपात्र को दी हुई विद्या, अनर्थ करने वाली है। उसी प्रकार कुपात्र को दी हुई कला भी अनर्थ करने वाली है कुपात्र के साथ की हुई मित्रता भी अनर्थ करने वाली है, उसी प्रकार कुपात्र को दिया हुआ धन भी अनर्थ करने वाला है ॥५॥

नास्ति न्यायसमं सत्यं, नास्ति धर्मसमः सखा ।
नास्त्युद्यमसमं मित्र, नास्ति भाग्यसमं धनम् ॥ ६ ॥

अर्थ—न्याय के समान कोई सत्य नही धर्म के समान कोई दूसरा मित्र नही, उद्यम के समान कोई साथी नही तथा भाग्य के समान कोई धन नही ॥ ६ ॥

देहस्य भूषणं प्रौढिः, सुमंत्री राज्यभूषणम् ।
रूपय भूषणं विद्या, सद्धार्म्य नरभूषणम् ॥ ७ ॥

अर्थ—शरीर का भूषण गंभीरता है, राज्य का सुयोग्य मंत्री, रूप का भूषण विद्या है तथा पुरुष का भूषण उद्यम धर्म के प्रति लगन है ॥ ७ ॥

देहस्य दूषणं तंद्रा, कुमंत्री राज्यदूषणम् ।
रूपस्य दूषणं जाड्य-मधार्म्य नरदूषणम् ॥ ८ ॥

अर्थ—आलस्य शरीर का दूषण है, अयोग्य मंत्री राज्य का शत्रु है, मूर्खता रूप का शत्रु है, अधार्मिकता पुरुष का शत्रु है ॥ ८ ॥

पुण्याच्च धनमाप्नोति, कीर्तिमिहैति तद्धनात् ।
परत्र स्वर्गसौख्य च, ह्यपवर्गं क्रमात्तत ॥ ६ ॥

अर्थ—पुण्य से प्राणी को धन मिलता है तथा धन से इस (पृथ्वी पर) लोक मे कीर्ति प्राप्त होती है, पर लोक मे स्वर्गीय सुख मिलता है तथा बाद मे मोक्ष भी प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

सम्यगाराधितो वर्ग , प्रथमो यैश्चजन्तुभि ।
तेषां साध्यास्त्रयो वर्गा, अनुक्रमेण मन्त्रिवत् ॥ १० ॥

अर्थ—जिस मनुष्य ने धर्म अर्थ काम मोक्ष में से प्रथम धर्म की भलि प्रकार आराधना की है, उसे कम से अर्थ काम मोक्ष अपने आप मन्त्री की भांति प्राप्त हो जाते हैं ॥ १० ॥

प्रिय ब्रूहि प्रिय कुर्यात्, प्रियमेवामृत परम् ।
प्रियवच प्रदानेन भवति प्राणिन प्रिया ॥ ११ ॥

अर्थ—हे प्राणी ! तू प्रिय बोल तथा प्रिय लगने वाले कार्यों को कर क्योंकि प्रिय उत्कृष्ट अमृत के समान है और प्रिय वचन बोलने से लोग प्रिय बन जाते हैं ॥ ११ ॥

विद्यासमं नास्ति शरीरभूषणं,
निंदासम नास्ति शरीरदूषणम्,
तृष्णासमा नास्ति परा च चिंता ।
क्लेशोपशान्ते समता परा न ॥ १२ ॥

अर्थ—विद्या के समान अन्य कोई शरीर का भूषण नही, इसी प्रकार निन्दा के समान शरीर का अन्य कोई दूषण नही तृष्णा के समान कोई बडी चिंता नहीं तथा क्लेश में शान्ति के समान उत्कृष्ट कोई समता नही ॥ १२ ॥

शब्दोरूपं रसोगंधः, स्पर्शो भोगोहि पंचधा,
किंपाकफलवद्ज्ञात्वा, दूरे यांति मनीषिणः ॥ १३ ॥

अर्थ—शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्शना भेदो से भोग पांच प्रकार के हैं। उसको किंपक्त वृक्ष का फल तुल्य जानकर सज्जन दूर जाते हैं ॥ १३ ॥

संतोषः परमं सौख्यं, संतोषः परमामृतम् ।
संतोषः परमं पथ्यं, संतोषः परमंहितम् ॥ १४ ॥

अर्थ—संतोष ही परम सुख है, संतोष परम अमृत है, संतोष ही परम पथ्य है तथा संतोष ही परम हित है ॥ १४ ॥

स्थानानि चाष्टादश किल्विषस्य,
तथैव सप्त व्यसनानि विश्वे ।
त्याज्यानि भव्यैर्भवदुःखहेतुर्विशेषतः ।
पापमतिः प्रमोच्या ॥ १५ ॥

अर्थ—संसार रूपी सागर मे रहने वाले मनुष्य को इस दुनियां में अठारह पापस्थानको को उसी प्रकार ही सात व्यसनों को त्यागना तथा संसार दुःख के समान ऐसी पाप रूपी बुद्धि को विशेष प्रकार से त्याग देना चाहिए ॥ १५ ॥

धार्यः प्रबोधो हृदि पुण्यदानं, शीलं सदांगीकरणीयमेव ।
तप्यंतपोभावनयैवकार्या,जिनेंद्रपूजागुरुभक्तिरुद्यमः ॥ १६ ॥

अर्थ—हृदय मे अच्छी वाणी को धारण करना, पुण्य दान करना शील व्रत को सर्वदा धारण करना, तप तपस्या करना तथा भावना से जिन पूजा करना, गुरु भक्ति करना और उसी प्रकार उद्यम भी करना चाहिए ॥ १६ ॥

卐

प्राणातिपातप्रक्रम :

यो दधाति तृणवक्त्रे, प्रत्यनीकोऽपि मानवी,
सोऽवध्य सता लोके कथ वध्यास्तृणादना ॥ १ ॥

अर्थ—जो मनुष्य तृण भक्षण करने वाला शत्रु है। वह सज्जनो के मारने लायक नही होता है तो तृण भक्षण करने वाले (पशुओ) को कसे मार सकते हैं ॥ १ ॥

प्रमादेन यथा विद्या, कुशीलेन यथा धनम् ।
कपटेन यथा मैत्री, तथा धर्मो न हिंसया ॥ २ ॥

अर्थ—प्रमाद से जसे विद्या नही आती दुष्ट आचरण से जैसे धन नही आता तथा कपट से जसे मित्रता नही होती उसी प्रकार हिंसा से धम नही हो सकता ॥ २ ॥

शिला समधिरुढाश्च, निमज्जति जलातरे ।
हिंसा श्रिताश्च ते तद्वत् समाश्रयति दुर्गतिम् ॥ ३ ॥

अर्थ—जिस प्रकार पत्थर पर चढे हुए मनुष्य पानी मे डुबते हैं उसी प्रकार हिंसा से आश्रित प्राणी दुगति मे जाते हैं ॥ ३ ॥

लावण्यरहित रूप, विद्यया वर्जित वपु ।
जलत्यक्त सरोभाति, तथा धर्मो दयाविना ॥ ४ ॥

अर्थ—जिस प्रकार सुदरता विना रूप की शोभा नही, विद्या बिना शरीर की शोभा नहीं तथा जल विना तालाब की शोभा नहीं उसी प्रकार दया विना धर्म की शोभा नही होती ॥ ४ ॥

卐

मृषावाद प्रकरण

संध्याभ्ररागवन्मिथ्या, वचनं कथमुच्यते ।
प्रतीतिभंगकृच्चात्र, परत्र दुःखकारणम् ॥ १ ॥

अर्थ—सन्ध्याकाल के वादलों के रंग के समान मिथ्यावचन क्यों बोलना चाहिए। क्योंकि वे इस लोक मे विश्वास को भंग करने वाले परलोक मे दुःख का कारण है ॥ १ ॥

याऽरण्ये रोदनात्सिद्धि, र्यासिद्धिः क्लीवकोपनात् ।
कृतघ्नसेवना त्सिद्धिः सासिद्धिः कूटभाषणात् ॥ २ ॥

अर्थ—वन मे जाकर भटकने से जो सिद्धि होती है तथा नपुंसक के क्रोध से जो सिद्धि होती है, वही सिद्धि झूँठ बोलने से होती है ॥ २ ॥

अग्निनासिच्यमानोऽपि, वृक्षोवृद्धिन चाप्नुयात् ।
तथासत्यविना धर्मः, पुष्टि नायाति कर्हिचीत् ॥ ३ ॥

अर्थ—जिस प्रकार अग्नि से जला हुआ वृक्ष बढ़ता नही उसी प्रकार सत्य के विना धर्म की किसी समय भी पुष्टि नही होती ॥ ३ ॥

असत्यवक्तुर्भुवि पक्षपातं,कुर्यान्न विद्वान्-किलसंकटेऽपि ।
तेन ध्रुवं हि वसुराजवत्स, इहापवादं नरकं परत्र॥४॥

अर्थ—विद्वान मनुष्य संकट आने पर भी वे पक्षपात करते नही क्योंकि इससे वसुराजा की तरह इस लोक मे उनकी बुराई होती है और परलोक मे नरक भोगी होते हैं ॥ ४ ॥ 卐

अदत्तादान प्रकरण

कातराणां यथा वैर्यं, वंध्यानां संततिर्यथा ।
नविश्वासस्तथा लोके, नृणामदत्तहारिणाम् ॥ १ ॥

अर्थ—डरपोक का जिस प्रकार धैर्य तथा वंध्या के जिस प्रकार सन्तान नहीं होती उसी प्रकार इस दुनिया में चोरी करने वाले का विश्वास नहीं होता ॥ १ ॥

कुक्षि शाकेन पूर्येत, यदिस्तोक धनार्जनम् ।
परनाऽदत्तमादद्या, द्यत स्याद्भूपतेभयम् ॥ २ ॥

अर्थ—थोड़ी कमाई होने पर सिर्फ शाक खाकर भी, पेट भर लेना चाहिए किन्तु जहाँ राजा का भय होता है, ऐसी चोरी नहीं करनी चाहिए ॥ २ ॥

अदत्त धननादद्या, त्सुखलिप्सुर्हिमानव ।
समद्योदु खमाप्नुयान् मड्डुकचौरवत्किन ॥ ३ ॥

अर्थ—सुख चाहने की इच्छा करने वाले मनुष्य को चोरी का धन नहीं लेना चाहिए। क्योंकि उसको मड्डुक चोर की तरह तुरन्त दुःख मिलता है ॥ ३ ॥

अनिष्ट खचरे घूकः स्वामिद्रोही नरेषु च ।
अनीष्टादप्यनिष्टं च, अदत्तमपलक्षणे ॥ ४ ॥

अर्थ—पक्षियों में घुवड़ पक्षी अनिष्ठ है तथा मनुष्यों में स्वामी से शत्रुता रखने वाला अनिष्ठ है उसी प्रकार कुलक्षण में चोरी अनिष्ठ से भी अनिष्ठ है ॥ ४ ॥ 卐

माऽदत्तं हि गृहाण वस्तु यदिचेत्तन्नास्तियदन्ङ्ग्युज्यते,
धैर्यं धेहि तथापिपक्षिभिवहा नीरं लभते स्थले ।
दत्तं येन वपुः सएव भुवि नो चिंतनकरिष्यत्यहो,
का वार्ता खलु ताः समग्ररचनाश्चिंता च तस्मिन्स्थिता ॥५॥

अर्थ—हे प्राणी ! तू चोरी नामक अवगुण ग्रहण मत कर, अगर तेरे पास कोई चीज नही हो तो जो चीज तेरे पास हो उसी मे धैर्य कर। क्योकि जिस प्रकार पक्षियो के जीने के लिए हर स्थान पर जल रख दिया जाता है। ज्यादा क्या कहना, जिसने शरीर दिया है वही जगत में अपनी फिकर करेगा और सारी रचना तथा चिना उसो में ही रही हुई है ॥ ५ ॥ 卐

मैथुन प्रकरण

स्त्रीलुब्धो जगति यश्चा, ऽत्यजद्यशस्तु तं चनरम् ।
दासीलुब्ध्या यथा मुंजो, ऽपकीर्त्या गीयते न किम्।१।

अर्थ—जो मनुष्य जगत मे स्त्रियो से मोहित है उन मनुष्यों के यश त्याज्य है। क्या दासी से मोहित मुंज राजा की अपकीर्ति नही हुई ? अर्थात (हुई) ॥ १ ॥

अन्तर्दुष्टामुखेमिष्टा, अनिष्टाका अतःपरम् ।
विषवल्लरीवत्त्याज्या, ज्ञानिभिःसुखकामिभिः ॥ २ ॥

अर्थ—दिल मे दुष्टता तथा मुख से मीठो ऐसी स्त्री से दूसरो कौनसी वस्तु अनिष्ठ है। उसी प्रकार मुख की इच्छा करने वाले ज्ञानी भी जहरी वेल को तज देते है ॥ २ ॥

उग्रसभोगत सूरि-कंता हि नरकं गता ।
स्वर्गं गत । प्रदशोच, तत्र सवरकारणम् ।। ३ ।।

अथ—सूरिकता उग्र सभोग से नरक मे गई है और प्रदेशी राजा स्वम में गये हैं। उसमें सवर कारण रूप है ।। ३ ।।
(सवर—कर्मो का आना रोकना)।

अंत श्यामा बहि श्यामा, रक्षाया गुटिकाइव ।
बहिर्दधति सौंदर्य-मतस्ताभस्मराशय ।। ४ ।।

अथ—जो स्त्रियाँ राख की गोली के समान अन्दर और बाहर श्याम होती है। फिर बाहर से सुन्दरता को धारण करती है किन्तु अन्दर से तो ऊपर के खीरे के समान है ।। ४ ।।

श्रीमत्कोणिकराट्च चेटकनृपे साक महत्सगर,
चक्राण किलकामकेलिकलित पद्मावतीप्रेरित ।
भोगासक्तमना नृपो मणिरथो भ्रातासम चाऽकरोत्,
द्रोह मोहवशात्परतु तदनु प्राप्त फल कीदृशम् ।। ५ ।।

अथ—पद्मावती से प्ररित तथा काम क्रीडा से युक्त हुए ऐसे श्री श्रोणिक राजा ने चेडा राजा के साथ महायुद्ध किया मोह वश भोगा से आसक्त जिनका मन ऐसे मणिरथ राजा के भाई के साथ विद्रोह किया किन्तु उसके बाद उसको कैसा फल मिला ।। ५ ।।

परिग्रह प्रकरण

प्रमेहिनां विषं सर्पि-र्मैथुनंचक्षुरोगिणाम् ।
तद्वन्निश्शेषजंतूनां, कालकूटः परिग्रहः ॥ १ ॥

अर्थ—प्रमेह के रोग वाले के लिए घी जिस प्रकार विष के समान है तथा आंख के रोगियो के लिए जिस प्रकार मैथुन विष के समान है उसी प्रकार सभी प्राणियो के लिए परिग्रह विष के समान है। ॥ १ ॥

यथाब्धेर्जलबिंदूनां, संख्यानैवात्र लभ्यते ।
तथैव धनलुब्धानां, दुःखमानं न दृश्यते ॥ २ ॥

अर्थ—जिस प्रकार इस जगत मे समुद्र के पानी की बूंदों की संख्या मिलती नही उसी प्रकार धन के लोभियो के दु.ख का प्रमाण नही दिखाई देता ॥ २ ॥

अशुष्कं यदि वाशुष्कं, मग्निः किं गणयेत् कदा ।
परिग्रहरतस्तद्वन्, न जानते परं निजम् ॥ ३ ॥

अर्थ—अग्नि क्या गीला या सूखा, गिनती नही ? उसी प्रकार परिग्रह से आसक्त हुआ मनुष्य अपना व पराया नही जान सकता ॥ ३ ॥

शीतज्वरीवशीतेन, वस्त्रावृत्तोऽपि पीड्यते ।
परिग्रही धनासक्तः, पीड्यते धनतृष्णया ॥४॥

अर्थ—जिस प्रकार ठण्डे शीत बुखार वाले मनुष्य को बहुत कपड़ा से ढकने पर भी दुखी ही रहता है उसी प्रकार धन का लोभी परिग्रह धारी मनुष्य धन की तृष्णा से दुखी होता है ॥ ४ ॥

गिर्यारोहणता समुद्रतरण देशाटनासेवन,
पाताले विवरे प्रवेशकरण निःशकमित्यादिकम्
य कुर्याच्च परिग्रहैकहृदयश्चेष्टामनेकामिह,
मृत्वेतो नरकावटेषु गमन चक्री सुभूमोऽकरोत् ॥५॥

अर्थ जिस प्रकार सुभूम चक्रीय परिग्रह से आसक्त होकर पर्वत पर चढ़ने की, समुद्र मे तरने की देशाटन करने की, पाताल व भोयरा में प्रवेश करने की चेष्टा की उसी प्रकार वह मृत्यु पाकर नरक मे गया ॥ ५ ॥

क्रोध प्रकरण

दण्डमुष्टि प्रहाराद्यन्नर्थान् करोत्यनेकशः ।
भूतावेष्टितवल्लोके, कोपयुक्तो हि मानव ॥१॥

अर्थ—क्रोध से भरा हुआ मनुष्य दुनिया मे अनेक प्रकार से बिना विचार से दण्ड मुष्टि प्रहार आदि अनेक प्रहार करी अनर्थ करता है ॥ १ ॥

दुर्गति प्रापणे पक्षो, विपक्षः शुभकर्मणाम् ।
सपक्ष आपदः क्रोधः, सकेनाद्रियते ततः ॥२॥

अर्थ—दुर्गति की प्राप्ति मे पक्ष करने वाला, शुभ कार्यों में शत्रु के समान आपदाओ की सोबत करने वाला जो क्रोध है उसको कौन अंगीकार करे ? ॥ २ ॥

ज्वलद्ववूलवद्भाति, कायः प्रायोऽतिकोपिनः ।
मुखे वायांतरे दाहः, सर्वपांभीमदर्शनः ॥३॥

अर्थ—अत्यन्त क्रोधी मनुष्य का शरीर प्रायःकर मुड़े हुए बवुंल के समान होता है। मुख मे विप होता है तथा अन्दर अग्नि समान दाह वाला ऐसा वह भयंकर दर्शन वाला होता है ॥ ३ ॥

आकरः सर्व दोपाणां, गुणानां च दवानलः ।
संकेतोऽखिलकष्टानां, क्रोध स्त्याज्यो मनीषिणा ॥४॥

अर्थ—सभी प्रकार दोषों की खान के समान तथा गुणो को जलाने मे दावानल के समान तथा सभी दुखों को सकेत रूप ऐसा क्रोध बुद्धिमान को तजना चाहिए ॥ ४ ॥

क्रोधाभिभूतपुरुषा नरके ब्रजेयु-स्तत्रापि
ताडननिबंधनमारणोत्थम् ।
दुःखं घनं च सहनं कृतकर्मणां च,
श्रीकृष्णवज्ञनगणाःसमुपार्जयंति ॥५॥

अथ—क्रोध से पराभव पाये हुए मनुष्य नरक मे जाते हैं वहाँ ताडन बंधन, वे मारण आदि से उत्पन्न हुए दु:ख देते हैं। और उसी प्रकार मनुष्यो का समूह श्री कृष्णजी की तरह किये हुए कर्मों को भोगता है ॥ ५ ॥

मान प्रकरण

य स्तब्धो गुरुणा साक-मन्यस्यनमन कुत ।
न छाया यं न लाभाय, मानो कर्येरवन्तृणाम् ॥१॥

अर्थ—जो मानी मनुष्य गुरु के समीप अक्कड से रहता है तब तो दूसरो के सामने नमने की तो बात ही क्या करनी ? अत इस प्रकार का मानी मनुष्य कयेर के वृक्ष के समान मनुष्यो को छायादायक या लाभदायक नही हो सकता।

स्याणुर्वा पुरुषो वाऽय दृष्ट्वेति तर्कयतियम् ।
स मानी दूरतस्त्याज्यो नम्रा दिगुणवर्जनात् ॥२॥

अथ—जिसको देखने से ठूठ है या पुरुष। इस प्रकार का मनुष्य तर्क करते हैं। ऐसे नम्रादिक गुणो से रहित हुए मानी व्यक्ति का दूर रखो ॥ २ ॥

शिक्षा लभते नो मानी, विद्यामीयान्न कर्हिचित् ।
विनयादिक्रियाशून्य, स्तभवत्स्तब्धता गत ॥३॥

अर्थ—विनय की क्रिया से शून्य हुआ तथा स्थभ की तरह स्तब्धता प्राप्त करने वाला ऐसा अहंकारी मनुष्य शिक्षा प्राप्त नही १र सकता तथा किसी समय भी विद्या प्राप्त नही कर सकता ॥ ३ ॥

अरण्यजं तरोः पुष्पं, समुद्रांभश्च शीतलम् ।
लावण्यं दंभिना तद्वन्मानिमानं विरर्थकम् ॥४॥

अर्थ—जिस प्रकार वन में पैदा हुआ पुष्प निरर्थक है समुद्र मे रहा हुआ शीतल पानी निरर्थक है तथा कपटी को सुन्दरता निरर्थक है। उसी प्रकार घमण्डी का घमण्ड भी निरर्थक है।

धात्रा दत्तं मानवत्यां लघुत्वं
मानोन्मत्ते रावणे दुर्मतित्वम् ।
दर्पोत्कृष्टे कोणिके दुर्गतित्वं
दुष्टान्मानात्सङ्गतिः केन लब्धा ॥५॥

अर्थ—जिस प्रकार मानवती को देव ने लघुता दी तथा अहंकार से उन्मत हुए रावण को दुर्गति दी कोणीक राजा को दुर्गति दी उसी प्रकार ऐसे दुष्ट मानी को कौन सुगति दे (कोई नही देता) ॥ ५ ॥

माया प्रकरण

मायोत्पनादविश्वासा-न्मुखामृतोऽपि मानुष
परसद्मप्रवेशं च, नाप्नुयात् श्वानवत्सदा ॥१॥

अर्थ—मुख से मीठा वचन बोलने वाला ऐसा मनुष्य कपट से उत्पन्न हुए अविश्वास से हमेशा कुत्ते के समान दूसरे के घर में प्रवेश पा नही सकता ॥ १ ॥

वञ्चना पठितं शास्त्रं, तदनर्थाय केवलम् ।
हरिभद्रस्य शिष्याणां, फलं किमुत न श्रुतम् ॥२॥

अर्थ—कपट से पढा हुआ शास्त्र केवल अनर्थ ही करेगा क्योंकि उसने श्री हरिभद्राचार्य महाराज के शिष्यों को जो फल मिला वह आपने शास्त्रों में पढा होगा ॥ २ ॥

मायया यत्तपस्तप्तं, महाबलेन साधुना ।
स्त्रीवेदो ह्यर्जितस्तेन, भुक्तो मल्लीभवेन्च सः ॥३॥

अर्थ—महाबल साधु ने भी जब कपट से तपस्या की थी उससे उसको स्त्रीवेद उपार्जन किया और वह स्त्रीवेद उसको श्री मल्लीनाथ तिर्थंकर के भव में भोगना पड़ा ॥ ३ ॥

दासीपुत्र पुत्र कपिनदति नर्त्यमानोऽपि दार,
दारा पत्ता धिरत्वं पट्टबन्धं नियमान समन्तान् ।

मायाया हेतुरत्र भव सुगुणनिधे भव्य मायाविरक्तो,
मायां संसारमूलं प्रणिजगदुरिति स्वस्तिकारा जिनेंद्राः ॥४

अर्थ—लोगों से नमस्कार करवाता उत्तम रूपवाला ऐसा कपील 'तु दासी पुत्र' तुझे धिक्कार है। इस प्रकार कहकर क्या तुने स्त्री को त्यागा नही ? आखिर उसने तो तुझे त्यागा नही। तथा पडित लोगों के वचन से चारों ओर से निंदा पात्र हुआ है ? इसी प्रकार होने का कारण माया ही थी इसलिए है उत्तम गुण का भण्डार भव्य मनुष्य तू माया से (कपट से) विरक्त था क्योंकि माया संसार का मूल है इस प्रकार कल्याणकारी श्री जिनेश्वर प्रभु ने कहा है ॥ ४ ॥

लोभ प्रकरण

स्थले चरेच्च बोहित्थं, शिलायामुदयेत्कजम् ।
लभेत्कं मृगतृष्णात-स्तदा हि लोभतः सुखम् ॥१॥

अर्थ—यदि जमीन पर जहाज चले, पत्थर पर कमल उगे तथा मृग तृष्णा से यदि पानी मिले तो लोभ से सुख मिल सकता है ॥ १ ॥

सर्पोऽनिष्टोऽथवा लोभो, द्वयोर्लोभस्त्वनिष्टकः ।
दशेच्च मर्द्दितः सर्पो, लोभो दशति सर्वदा ॥२॥

अर्थ—सर्प दुखदायी है या लोभ दुखदायी है इन दोनों में पूछा जाए तो लोभ ही दुखदायी कहलाएगा। क्योंकि सर्प तो मर्दन करने से आने पर ही डसता है। किन्तु लोभ तो हमेशा डसता है॥२॥

समुद्रस्यैव कल्लोलात्कल्लोलो वर्धते यथा।
तद्वल्लाभाच्च लोभोऽपि, मम्मणवणिजो यथा॥३॥

अर्थ—जिस प्रकार समुद्र में लहरों से लहरें बढ़ती हैं उसी प्रकार मम्मणवणिक के समान लोभ से लोभ की वृद्धि होती है॥३॥

मारयेत्सापराधं च, पितरं भ्रातरं सुतम्।
अपवादं भयं मृत्यो-र्लोभी यथा च मद्यप॥४॥

अर्थ—मदिरापान करने वाले के समान लोभी मनुष्य अपने पिता को, भाई को पुत्र को मार देता है तथा बुरा चलन की तथा मृत्यु के भय की परवाह नहीं करता॥४॥

नानारम्भविपाकपारगमता हा नारकाणां भवे,
मानाऽमानविचारमुक्तमार्गा याम निग्रन्था पुरः।
कृत्याकृत्यसमर्थवर्जनता देवार्चनं कुर्वता,
[illegible] दुर्मदा हि [illegible] लोभो जगत्यापदः॥५॥

अर्थ—हा! नाना प्रकार के कर्मों के विपाक रूपी पाक में [illegible] नारकियों के भव में, सदा मान, अपमान का विचार [illegible] [illegible] [illegible], तथा शुभ कर्मों [illegible] मनुष्य के मन में घोर दुख [illegible] [illegible] देखकर भी दिखाने वाला है॥५॥

राग प्रकरण

मुच्यते शृंखलावद्धो, नाडीवद्धोऽगिमुच्यते ।

न मुच्यते कथमपि,प्रेम्णा वद्धो निरर्गल: ॥ १ ॥

अर्थ—सांकल से वधा हुआ प्राणी भी पहुँचाया जाता है । उसी प्रकार डोरी से वधा हुआ प्राणी भी मुक्त हो सकता है किन्तु प्रेम से वधा हुआ प्राणी किसी प्रकार से भी मुक्त नहीं हो सकता ॥ १ ॥

भर्तु विरहतोनार्य:, प्रविशत्यनलांतरे ।

स्वेच्छया च सहर्षेण, तत्र प्रेमप्रपंचक: ॥ २ ॥

अर्थ—पति के विरह से स्त्री अपनी इच्छा से हर्ष सहित अग्नि मे प्रवेश करती है, उसमे भी प्रेम का प्रपंच है ॥ २ ॥

मनस्तत्र वचस्तत्र, जीवस्तत्रैव संवसेत् ।

नेत्रावलोकनं तत्र, रागो यत्रोपतिष्ठते ॥ ३ ॥

अर्थ—जहाँ राग है वहाँ मन, वचन और जीव बसा हुआ रहता है, तथा आँखो की दृष्टि भी वही रहती है ॥ ३ ॥

रागिणिगुणता पश्येःद्वै गुण्य हि विरक्तके ।

रागीगुणावगुणांच, नपरीक्षति कर्हिचित् ॥ ४ ॥

अर्थ—रागी मनुष्य रागी के समान ही गुण देखता है तथा विरक्त के समान अवगुण को देखता है । वह रागी मनुष्य किसी भी दिन गुण व अवगुण की परीक्षा करता नही ॥ ४ ॥

पय पोतो नीरे तरति तपन शीतकिरण,
दधात्येव नित्यं किमु कुमुदबधुं खरकरम्।
धरत्युर्वी गुर्वी कथमपिच भारेण नमति,
तथा तीव्रे रागे कनकरथवच्छ भवति भो ॥ ५ ॥

अथ—लोहे का जहाज पानी मे किस लिए तरता है ? सूय चन्द्र का किस लिए धारण करता है, तथा ऐसी बडी पृथ्वी भार से किस लिए नमती है ? उसी प्रकार तीव्र राग होते हुए भी करन रथ की तरह क्या सुख होता है ॥ ५ ॥

द्वेष प्रकरण

यस्माच्च बद्धचते कर्म, तपस्यतो न मुचते ।
तत्प्राणिनामितिज्ञात्वा, त्याज्यो द्वेषोवुधै सच ॥-१ ॥

अथ—जिस द्वेष मे प्राणियो का कम बधन होता है। तथा तपस्या तपने पर भी जिसके कारण प्राणी को मोक्ष प्राप्त होता नही, यह जानकर उस द्वेष को पण्डितो को त्याग देना चाहिए ॥ १ ॥

स्वकीय परकीयच, द्वेषाक्रान्त सदा जना ।
विद्धयेरन् वाक्यशल्यैश्च, बब्बुलकटका यथा ॥ २ ॥

अर्थ—मनुष्य द्वेष से बबूल के काटा के समान हमेशा अपने

ओर पराये मनुष्यों का वचन रूपी शल्यों से छेदते हैं ॥ २ ॥

येषु यावच्च रागोऽभूत्, तेषु तावच्च सद्‌गुणाः ।
द्वेषोत्पन्नेषु तेष्वेव, दोषं पश्येद्धि केवलम् ॥ ३ ॥

अर्थ—जिन मनुष्यों में जहाँ तक राग हो वहाँ तक उसमें सद्‌गुण ढूढे जाते हैं और उसी में से जब द्वेष होता है तब केवल दुषण ही ढूंढते हैं ॥ ३ ॥

द्वेषिणां ज्वरिणां लोके द्वयोः साम्या प्रति क्रिया ।
क्रूरत्वं कटुकत्वं च, बहिरंतोऽपितापवान् ॥ ४ ॥

अर्थ—द्वेषी मनुष्य और ताप वाले (क्रोध) मनुष्य की प्रकृति समान होती है क्योंकि द्वेषी मे जैसे क्रोध प्रवृति होती है उसी प्रकार ताव वाले में भी कडवाहट होती है। तथा बाहर से अतरग से वह ताप वाला होता है ॥ ४ ॥

श्रीद्वीपायनतापसेन महती प्रज्ज्वालिता द्वारिका
द्वेषादेव च वर्धमाननगरे श्रीशूलपाणिरभूत् ।
मारी येन विमोचिता च सहसा लोकाश्च दुःखी कृता,
तस्मात्सोऽत्र विमुच्यतामिति जिनैर्व्याख्यायि संघेनघे ॥५॥

अर्थ—द्वेष से द्वीपायन नामक तपस्वी ने महान् द्वारिका नाम की नगरी को जला दिया तथा वर्धमान नाम के नगर में जो शूलपाणी यक्ष हुआ। तब तुरन्त मरकी चला कर लोगो को दु.खी किया। अर्थात् द्वेष को छोडो। इस प्रकार जिनेश्वर भगवान् के द्वारा निष्पापी सघ के समक्ष कहा हुआ है ॥ ५ ॥

कलह प्रकरण

अग्नि मूते यथा धूम धूम सूतेऽसितद्युतिम् ।
अन्यायोऽपयशः सूते, तद्वत्क्लेशश्चकिल्विषम् ॥ १ ॥

अर्थ—अग्नि जिस प्रकार धुआं पैदा करती है, धुआं जिस प्रकार श्याम कान्ति को पदा करता है तथा अन्याय जिस प्रकार अपयश को उत्पन्न करता है उसी प्रकार क्लेष दुख को उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

स्तोकोऽप्यग्निर्दहत्येव, काष्टादिप्रभृत घनम् ।
क्लेशलेशोऽत्र तद्वच्च, वृद्धितस्तनुदाहक ॥ २ ॥

अथ—थोडी अग्नि भी जिस प्रकार ज्यादा लकडी जला सकती है उसी प्रकार लेश मात्र क्लेश की वृद्धि से शरीर जल जाता है ॥ २ ॥

कलकेन यथा चद्र, क्षारेण लवणाबुधि ।
कलहेन तथा भाति, ज्ञानवानपि मानव ॥ ३ ॥

अथ—जिस प्रकार कलक से चद्रमा, खार से समुद्र । उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य कलह से शोभित होता है ॥ ३ ॥

आत्मान तापयेन्नित्य, तापयेच्च परानपि ।
उभयोर्दु खकृत्क्लेशो, यथोष्णरेणुका क्षितौ ॥ ४ ॥

अर्थ—इस पृथ्वी में गर्म हुई रेत-की तरह क्लेश है जो कि खुद को व दूसरे को हमेशा ताप देते हैं। अतः इसी प्रकार क्लेश भी दोनों को दुःख देता है ॥ ४ ॥

संग्रामतोऽनेन सुखं ह्यवाप्तमितिश्रुतं केन न दृष्टमुर्व्यां ।

कंसेन सा जीवजसाशु लेभे या युग्मवंशक्षयकारिणी च ॥५॥

अर्थ—सग्राम करने से किस मनुष्य को सुख मिला। यह दुनियां में किस मनुष्य ने सुना है? क्योकि कस ने जीव जसा को प्राप्त किया जो दोनो वंशों का क्षय करने वाली सिद्ध हुई है ॥ ५ ॥

अभ्याख्यान प्रकरण

काचकामलदोषेण, पश्येन्नेत्रे विपर्ययम् ।

अभ्याख्यानं वदेज्जीह्वा, तत्र रोगःकउच्यते ॥ १ ॥

अर्थ—मनुष्य काच कामल नाम के दोष से विपरित तरह से देखता है किन्तु जीभ जो अभ्याख्यान बोलती है उसमें कौन सा रोग कहलाता है ॥ १ ॥

यथाऽभक्ष्यं न भक्ष्येत, द्वादशव्रतधारिभिः ।

अभ्याख्यानं न चोच्येत, तथा कस्यापि पंडितैः ॥ २ ॥

अर्थ—जिम प्रकार बारह व्रतधारी अभक्ष वस्तु नही खाते उसी प्रकार पंडित भी किसी का अभ्याख्यान नही बोलते ॥ २ ॥

अग्नि स्तोकाद्वृद्धिमायाति योगात्
तद्वद्वृद्धि क्लेशलेश प्रयाति ।
अभ्याख्यानात् स्तोकतः कर्म वृद्धि
प्राप्नोत्येव कष्टत सा न याति ॥ ३ ॥

अर्थ—जिस प्रकार अग्नि थाडे योग से वृद्धि पा जाती है उसी प्रकार क्लेश का लेश मात्र भी वृद्धि पा जाता है। उसी प्रकार थोडे अभ्याख्यान से कर्मों को वृद्धि पाते हैं और इन कर्मों की वृद्धि इस प्रकार कष्ट से भी जाती नहीं ॥ ३ ॥

देवेषु किल्बिषो देवो, ग्रहेषु च शनैश्चर. ॥
अभ्याख्यान तथा कर्म, सर्व कर्मसु गर्हितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—जिस प्रकार देवो में किल्विष देव तथा ग्रहों में शनिश्चर उसी प्रकार अभ्याख्यान सभी कर्मों में निन्दनीय हैं ॥ ४ ॥

दवैश्चम्पाद्वारमुद्घाटित तत्
सौभद्राया शीलमाहात्म्यमेव ।
मिथ्याभिख्या दुर्गतिर्वा हि तस्या
यदत्रा अभ्याख्यामेवात्र हेतु ॥ ५ ॥

अर्थ—देवो ने चम्पा नगरी का द्वार खोला था उसी प्रकार

से मिलता भुलता सुभद्रा के शील का महात्मय था। तया उसकी मिथ्यात्वी मृ मासु की दुर्गति हुई उसमें सिर्फ अभ्याख्यान ही कारण था ॥ ५ ॥

पैशून्य प्रकरण

अदाता च यथा लोके, वरो निःस्वो धनी न च।

मूको वरं न वाक्दलः, पैशून्यं यदि तिष्ठति ॥ १ ॥

अर्थ—जिस प्रकार दुनियां मे निर्धन अच्छे होते हैं किन्तु नही दान देने वाला धनवान अच्छा नहीं होता। इस प्रकार गूंगा मनुष्य अच्छा होता है किन्तु जो चुगलीखोर मनुष्य होता है ऐसा वाचाल मनुष्य अच्छा नही होता ॥ १ ॥

दानशीलतपोभावै-रस्यैघतेवृपो भुवि।

यस्य मनोवच.कायै;, पैशून्यं नाभिसंश्रयेत् ॥ २ ॥

अर्थ—जिस मनुष्य के मन में, वचन में और काया में चुगली का आश्रय रहा हुआ नही है उसका धर्म, दान, शील, तप और भाव दुनियाँ मे वृद्धि पाता है ॥ २ ॥

अन्यस्य तापनाद्यर्थं, पैशून्यं क्रियते जनैः।

स्वात्मा हि तप्यते तेन, यदुसं स्यान्फलं च तत् ॥ ३ ॥

अर्थ—दूसरों को दु ख देने के लिए जो मनुष्य चुगली खाता

है उससे उल्टा खुद की आत्मा को दुःख होता है क्योंकि जैसा बोया हो वैसा फल मिलता है ॥ ३ ॥

दानं च विफलं नित्यं, शौर्यं तस्य निरर्थकम् ।
पैशुन्यं केवलं चित्ते, वसेद्यस्याऽयशो भुवि ॥ ४ ॥

अर्थ—जिनके मन मे केवल चुगली ही रही हुई है उसका दान निष्फल जाता है तथा उसका पराक्रम भी निष्फल जाता है और उसका अपयश पृथ्वी पर फैल जाता है ॥ ४ ॥

रत्यरति प्रकरण

न विद्यतेरति प्राज्ञ, नं विद्यतारति पुन ।
कर्माधीन च सर्वं स्या-त्ततस्तामल्पताकुरु ॥ १ ॥

अर्थ—अच्छा मनुष्य रति को गिनता नहीं उसी प्रकार अरति को भी गिनता नहीं, क्योंकि सभी कर्मों के आधीन है । इसलिए उन रति अरति को कम करो ॥ १ ॥

आदौ रागस्ततो द्वेष-स्तस्माल्क्लेशपरंपरा ।
तद्वदादौ रतिश्चार-तिस्ततः कर्मबंधनम् ॥ २ ॥

अर्थ—जिस प्रकार पहले राग, और उससे द्वेष तथा उससे क्लेश की परपरा पड जाती है । उसी प्रकार पहले रति उससे अरति और उससे ही कर्म बंधन होता है ॥ २ ॥

वरं छाया वरं वायु-र्वरं पुत्रो वरं धनम् ।

वरं बंधुर्वरं जाये-त्यादिरत्युद्भवं वचः ॥ ३ ॥

अर्थ—छाया उत्तम है वायु उत्तम है, पुत्र उत्तम है, धन उत्तम है, बंधु उत्तम तथा स्त्री उत्तम है इत्यादि वचन रति से उत्पन्न होने वाला जानना चाहिए ॥ ३ ॥

उष्णा छाया धनंस्तोकं, वायुर्लू तादिसंयुतः ।

कुपुत्रः कुलटा रामे-त्याद्यरत्युद्भवं वचः ॥ ४ ॥

अर्थ—छाया उष्णा है, धन थोड़ा है, वायु लू चलने जैसा है, पुत्र दुराचारी है, स्त्री कुलटा है इत्यादि वचनो को अरति से उत्पन्न हुआ जानना चाहिए ॥ ४ ॥

परापवाद प्रकरण

रजांसि दशना यत्रा-ऽधरोष्ठठिक्करीद्वयम् ।

मूर्खरसनापराप-वादगूथं समुद्धरेत् ॥ १ ॥

अर्थ—जहाँ दान रूपी रज है तथा होठ रूपी दोनो ठीकड़ी है उसी प्रकार मूर्खो की जीभ दूसरो के लिए अपवाद रूपी विष्ठा उठाती हैं ॥ १ ॥

वक्तुं नैव क्षमा जीह्वा, यदि मूकस्य तद्वरम् ।

परं परापवादं च, जंजप्यतेन तद्वरम् ॥ २ ॥

अर्थ—जिस प्रकार गूंगे मनुष्य की जीभ बोलने के लिए शक्तिवान् होती नही, फिर भी श्रेष्ठ है। किन्तु जो जीभ दूसरो का अपवाद बोलती है, वह उत्तम नही है ॥ २ ॥

वक्त्रं परापवादेन, स्वस्य यत्समलं कृतम्।
तच्च केनाप्युपायेन, कर्तुं नार्हति निर्मलम् ॥ ३ ॥

अर्थ—दूसरे का अपवाद से खुद का मुंह मलीनता वाला हुआ है उसको वह किसी भी उपाय से निर्मल नही कर सकते ॥ ३ ॥

एके च जातिचडाला, कर्म चडाल निंदक।
ज्ञात्वेति हृदये सम्यक्, परापवादमात्यजेत् ॥ ४ ॥

अर्थ—इस दुनियां में कितने ही तो जाति से चण्डाल हैं किन्तु निन्दा करने वाले का कर्म भी तो चण्डाल ही है, इसलिए ठीक तरह से हृदय में जानकर दूसरा को अपवाद करने का त्याग करो ॥ ४ ॥

मायामृषा प्रकरण

मनस्यन्यद्वचस्यन्यत् मायामृषा च सोच्यते।
कदापि सुखदा न स्या-द्विश्वे यथा पराङ्गना ॥ १ ॥

अर्थ—मन मे क्या और वचन में क्या उसको माया मृषा कहते हैं जिस प्रकार जगत में वश्या को कभी भी सुख करने वाली नहीं ॥ १ ॥

फलं यथेंद्रवारुण्या:, कटु मायामृषावच: ।
अंतरंगधिया श्रेयस्करं न स्याद्यतोऽत्र च ॥ २ ॥

अर्थ—जिस प्रकार इन्द्रवारुणी नामक वेल का फल कड़वा होता है, उसी प्रकार मायामृषा का वचन कड़वा है और वह अतरंग बुद्धि से इस दुनियाँ में कल्याणकारी होती नहीं ॥ २ ॥

खड्गधारां मधुलिप्तां, विद्धि मायामृषां तत: ।
वर्जनीया प्रयत्नेन, विदुषा शिववांछता ॥ ३ ॥

अर्थ—मायामृषावाद को मधु से लिपटाती हुई तलवार की धार समान जानना चाहिए, उसी प्रकार कल्याण चाहने वाले ऐसे पण्डितो को प्रयत्नपूर्वक उसका त्याग करना चाहिए ॥ ३ ॥

मुग्धप्रतारणाद्यार्थं मायामृषां वदेन्न च ।
पूर्वं सुधानिभा सा च, यतोऽन्ते तत्फलं कटु ॥ ४ ॥

अर्थ—भोले मनुष्य को ठगने आदि के लिए मायामृषावाद वोलना नही क्योकि पहले तो अमृत रस के समान लगता है किन्तु उसका परिणाम उसका कड़वा फल है ॥ ४ ॥

मिथ्यात्वशल्य प्रकरण

शत्रुभिर्निहितं शस्त्रं, शरीरे जगति नृणाम् ।
यथा व्यथां करोत्येव, तथा मिथ्यात्वमात्मन: ॥ १ ॥

अर्थ—शत्रु द्वारा शरीर पर फेंका हुआ शस्त्र जिस प्रकार इस जगत मे मनुष्य को दु ख देते हैं, उसी प्रकार मिथ्यात्व शल्य आत्मा को दु ख देता है ॥ १ ॥

दुर्वचन पराधीन, शरीरे कष्टकारकम् ।

शल्य शल्यतर तस्मात्, मिथ्यात्वशल्यमात्मनि ॥ २ ॥

अर्थ—शल्य समान कुवचन है पराधीनता जिस प्रकार कष्ट कारक है ज्यादा शल्य रूप वैसा ही मिथ्यात्व आत्मा को कष्ट कारक है ॥ २ ॥

स्वाध्यायेन गुरोर्भक्त्या दीक्षया तपसा तथा ।

येन केनोद्यमेनैव, मिथ्यात्वशल्यमुद्धरेत् ॥ ३ ॥

अर्थ—सज्झाय के ध्यान से, गुरु की भक्ति से, दीक्षा से, तप से इस प्रकार जहाँ तक हो उद्यम से मिथ्यात्व-रूपी शल्य का उद्धार कर ॥ ३ ॥

मिथ्यात्वशल्यमुन्मूल्य, स्वात्मान निर्मलीकुरु ।

यथाऽजस्र सुसिंदूर-रजसाभुवि दर्पण ॥ ४ ॥

अर्थ—हे भव्य प्राणी ! तू मिथ्यात्व रूपी शल्य को मूल में से उखाड़कर तेरी शुद्ध की आत्मा-को निर्मल कर। जिस तरह उस तरह कि हमेशा सिन्दूर के रज से दुनियाँ में जिस प्रकार दर्पण निर्मल होता है उसी प्रकार ॥ ४ ॥

द्यूतव्यसन प्रकरण

न च स्याद् द्रोहतः प्रेम, परस्त्रो लंपटाद्यशः ।
दयया रहितो धर्मो, यथा द्यूताद्धनं तथा ॥ १ ॥

अर्थ—जिस प्रकार द्रोह से प्रीती होती पर स्त्री से प्रेम करने से यश मिलता नही तथा दया विना जिस प्रकार धर्म होता नही उसी प्रकार जुगार खेलने से धन नही होता ॥ १ ॥

द्यूतस्य व्यसनं त्याज्यं, नरेण शुभवांछता ।
हठाद्यदि न मुच्येत, तदा क्लेशपरंपरा ॥ २ ॥

अर्थ—कल्याण को चाहने वाले मनुष्य को जुगार का व्यसन त्याग देना चाहिए और अगर कभी हठ से जो उसका त्याग करने में नही आवे, तो क्लेश ही क्लेश होता है ॥ २ ॥

लभेत शं पराधीनात्, तत्वबुद्धि तु मद्यपात् ।
यदा प्रमादतो ज्ञानं, भवेद् द्यूताद्धनं तदा ॥ ३ ॥

अर्थ—जो पराधीनता से सुख मिलता हो, जो मदिरा पान करने वाले मनुष्य के पास से तत्व की वुद्धि मिलती हो तथा प्रमाद से जो ज्ञान मिलता हो तो जुगार से धन मिलता है ॥ ३ ॥

न यंत्रसाध्यं न च तंत्रसाध्यं, नमंत्रसाध्यं न च मंत्रिसाध्यम् ।
एवंविधं द्यूतमतः प्रमोच्यं, नो चेत्त्यजेत्पांडववद्भवेच्च ॥४॥

अर्थ—जुगार को यन्त्र से भी साध सकते नहीं, तन्त्र से भी साध सकते नही, मंत्र में भी साव सकते नहीं तथा मैत्री से भी साध सकते नही अत इस प्रकार के जुगार का त्याग करो। अगर उसका त्याग नही कर सकोगे तो, पाण्डवों की, तरह दुख मिलेगा ॥ ४ ॥

द्यूतान्नलेनापि च-राज्यभाग्ममोचि द्रव्य-नृपकोटिभिश्च।
श्रीमूलदेवप्रमुखैस्तथेह लभेत को द्यूतत एव द्युम्नम् ॥५॥

अर्थ—जुगार से नल राजा को राज्यभार त्यागना पडा तथा श्री मूलदेव आदि क्रोडोगम के राजाओ को द्रव्य त्याग करना पडा इस प्रकार इस दुनियाँ मे किस मनुष्य ने जुगार से धन प्राप्त किया है ॥ ५ ॥

मांसव्यसन प्रकरण

मामादनात्प्रणश्यति, देहश्री सुमति सुखम्।
शौच सत्य यश पुण्य, श्रद्धाविश्वाससद्गति ॥ १ ॥

अर्थ—मास भक्षण करने में शरीर की शोभा, उत्तम बुद्धि, सुख, पवित्रता सत्य यश, पुण्य श्रद्धा, विश्वास तथा उत्तम गति का नाश होता है ॥ १ ॥

मामादनाज्जनाना हि, जायते विभ्रमो ध्रुवम्।
निदयत्वमशौच्य च, दुर्धादु खपरपरा ॥ २ ॥

अर्थ—अर्थात मांस भक्षण से मनुष्यों को वास्तव में विभ्रम, निर्दयता, अपवित्रता, दुर्बुद्धि तथा दुःख प्राप्त होता है ॥ २ ॥

प्रपश्यंति पशून् यत्र, मनस्तत्र प्रवर्तते ।
रागता मांसपुष्टेस्या, दुर्द्बलत्वे विरागता ॥ ३ ॥

अर्थ—अर्थात् मांस खाने वाला मनुष्य जैसे ही पशुओ को देखता है वैसा ही उसका मन हो जाता है। अर्थात् पशु मास मे पुष्ट हुआ होता है उसके उपर राग वध जाता है तथा जो पशु दुर्वल होता है उसके प्रति उमको विराग हो जाता है ॥ ३ ॥

पापकर्मघटे पूर्णे, रौद्राध्यानवशं गते ।
मांसभुग्मरणं प्राप्य, व्यथां सहते दुर्गतेः ॥ ४ ॥

अर्थ—मांस भक्षण करने वाले मनुष्य अपने आप कर्मो का घड़ा भरते हुए भो रौद्ध्यान के वशीभूत होते हुए भी मृत्यु प्राप्त कर नरक की वेदन सहन करते है ॥ ४ ॥

सा रेवती या नरके प्रविष्टा
मांसादनाद्भीम कुकर्मकर्त्री
श्री श्रेणिकेनापि पलाशनाच्च
प्राप्ता हि पीडा नरकस्य तीव्रा ॥ ५ ॥

अर्थ—भयकर कुकर्म करने वाली प्रसिद्ध रेवती को मांस भक्षण करने से नरक मे प्रवेश करना पड़ा। और श्री श्रेणिक राजा ने भी मास भक्षण से नरक की भयकर पीड़ा प्राप्त की ॥ ५ ॥

मदिरापान व्यसन प्रकरण

पारवश्यमशुचित्व, विकलत्वमचेष्टता ।
निर्दयत्व भवेत्तस्मात्, सुरापान विवर्जयेत् ॥ १ ॥

अर्थ—मदिरा पान से परवशता, अपवित्रता, विकलता, निश्चेष्टता तथा निर्दयता होती है । अत मदिरा पान का त्याग करना चाहिए ॥ १ ॥

शथिल्य विग्रहे वस्त्रे, नेत्रयुग्मे मदान्धता ।
पतन यत्र तत्रापि, मद्य पिबेत्ततो न च ॥ २ ॥

अर्थ—अर्थात मद्यपान करने से शरीर मे और वस्त्र मे शिथिलता होती है । दोनो आंखो मे मदान्धता (नजर कम) होती है तथा जसे तसे पतन होता है । इस कारण मदिरा पान नही करना चाहिए ॥ २ ॥

सततिर्नास्ति वन्ध्याया, कृपणस्य यशो न हि ।
कातरस्य जयो नैव, मद्यपस्य न सद्गति ॥ ३ ॥

अर्थ—जसे वन्ध्या स्त्री के सतान नही होती कृपण का यश नही मिलता, डरपोक को विजय नही मिलती, उसी प्रकार मदिरा पान करने वाले मनुष्य को उत्तम गति नही मिल सकती ॥ ३ ॥

यस्या धवो माधववासुदेव, सुवर्णदुर्गा धनदेवदत्ता ।
सा द्वारिका प्रज्वलिता च नून
यस्यापि हेतु किल मद्यपानम् ॥ ४ ॥

अर्थ—जो द्वारिका नगरी के स्वामी श्री वसुदेव थे तथा जिनके सोने का गढ था तथा जिसको कुवेर ने दिया था वह द्वारिका जो वास्तव मे जल गई उसमें भी मद्यपान का ही फल था ॥ ४ ॥

वेश्या व्यसन प्रकरण

कुष्टाभिभूतमृत्यानां, मन्येतानंगतुल्यताम् ।
द्रव्यार्थं न च स्नेहार्थं, गणिका सुखदान न सा ॥ १ ॥

अर्थ—जो वैश्या स्त्री स्नेह के लिये नही परन्तु सिर्फ द्रव्य के लिये कोढ़ से पर भव पाये हुए मनुष्यों को भी काम देव के समान मानती है अतः ऐसी वैश्या सुखदाई नही ॥ १ ॥

लोभार्थिनी निर्लज्जा च, पापिष्टा पापिष्टा पापकुंडिका ।
विट्चुंविता च नि.स्नेहा, कथं सेव्या पणांगना ॥ २ ॥

अर्थ—केवल लोभ के ही प्रयोजन वाली, विना लज्जावाली, पापिष्ट, पापो के कुण्ड के समान वैश्यागामी पुरुषो से चुनवन करने वाली तथा विना स्नेह की ऐसी वैश्या स्त्री का क्यों सेवन करना चाहिये ॥ २ ॥

सा कंयाश्लेपमाधत्ते, परं प्रीतिविवर्जिता ।
तेनाऽभ्भास्तत्र बध्यन्ते, यथा सिहाश्च पंजरे ॥ ३ ॥

अर्थ —वह कठ से आलिंगन तो करती है, किन्तु वह बिना प्रेम की ही होती है। अर्थात् अज्ञानी मनुष्य, पिंजरे मे जिस प्रकार सिंह बधता है उसी प्रकार उसके साथ प्रेम से बध जाता है ॥ ३ ॥

वैश्यासगाच्च सद्यैव, नश्यत्यच्छवियंश ।
लज्जा च सतति सिद्धि, द्रव्य च गृहगागना ॥ ४ ॥

अर्थ—वश्या के सग से नीचे बताई हुई सात वस्तुओ का नाश होता है शरीर की कान्ति, यश, लज्जा सतति, सिद्धि, धन तथा घर की स्त्री का नाश होता है ॥ ४ ॥

कदापि वेश्या न गुणार्थिनी स्या,
द्रूपार्थिनी नैवहितार्थिनीच ।
विद्यार्थिनी नापि न मन्यसे चेद्वार्तां
शृणु त्व कयवन्नकस्य ॥ ५ ॥

अर्थ—वश्या स्त्री कभी भी गुण वाली, रूप वाली, हित करने वाली, विद्या की प्रयोजन वाली नही होती। अत हे भव्य प्राणी अगर तू यह बात नही मानता हो तो तू कयवन्न की कथा का श्रवण कर ॥ ५ ॥

आखेट व्यसन प्रकरण

धूपात्प्रस्विन्नदेहश्च, ह्यत्यते वनगह्वरे ।
आखेटे किं सुख तत्र, पापरूपे निजात्मन ॥ १ ॥

अर्थ—जो तुझे शिकार पकड़ने से शरीर पर पसीना होता है तथा भयकर वन मे भटकना पडता है तो ऐसे पाप रूपी शिकार में तुझे अपनी आत्मा को क्या सुख मिलता है ।। १ ।।

पुनः पुनः प्रपच्येत, परभवे नरकावनौ ।
सततं रुधिरालिप्त-करेणाखेटकारिणा ।। २ ।।

अर्थ—हमेशा खून से लिपटा हुआ जिसका हाथ होता है ऐसा शिकार करने वाला मनुष्य पर भव मे नरक मे जाकर बराबर अत्यत दु ख पाता है ।। २ ।।

आखेटकेषु विध्येरन्, प्राणिनः प्राणिनोऽत्र ये ।
नरके तेऽप्यनुविध्येरन्, परत्रेत्यवदभिनः ।। ३ ।।

अर्थ—जो प्राणी इस जगत मे शिकार पकड़ कर मारता है वह पर भव मे नरक में जाकर विधाता है इस प्रकार श्री जिनेश्वर भगवान् ने कहा है ।। ३ ।।

श्वभ्रद्वाराणि पंचैव, द्रोहो हत्या तथा भुवि ।
मांसादनं गुरोर्निंदा, तथा खेटकपातकम् ।। ४ ।।

अर्थ—इस जगत मे नरक जाने के पाच द्वार कहे हैं द्रोह (दूसरों की ईर्ष्या) हत्या यानि जीवो की हिसा मांस, भोजन गुरु की निंदा तथा, शिकार से हुए पाप ये पाँच नरक के द्वारा है ।। ४ ।।

आखेटकं चेद्यदि न त्यजेच्च,
परत्र वधादिक दुःखराशिम् ।

सहेत चास्मिन् परमापद हि,

यथाऽजपुत्रो रघुवशजात ॥ ५ ॥

अर्थ—प्राणी ! कोई भी मनुष्य परलोक मे जिस प्रकार वधन आदि दु खो के समूह से भरा पडा है ऐसा मनुष्य अगर शिकार को नही त्यागता है तो वह रघुवश मे उत्पन्न हुआ अज पुत्र की तरह इस लोक में भी अत्यन्त दु ख सहन करता है ॥ ५ ॥

चौर व्यसन प्रकरण

चौर्यकर्ता चौरमत्री, स्थानदश्चौर रक्षक ।

चौरेण सह व्यापारी, चौर पचविध स्मृत ॥ १ ॥

अर्थ—चोरी करने वाला, चोर के साथ गुप्त बातें करने वाला, चोर को रहने के लिए स्थान देने वाला चोर का रक्षण करने वाला तथा चोरो के साथ व्यापार करने वाला इस प्रकार के पाच प्रकार के चोर कहलाते है ॥ १ ॥

निर्दय सरवाक् क्रूर, शठोधृष्टश्च निर्भय ।

निर्दाक्षिण्य क्रूरकर्मा, चौरस्याष्टौ गुणा स्मृता ॥ २ ॥

अर्थ—बिना दया वाला, कठोर वचन बोलने वाला, क्रूर लुच्चाई करने वाला, ढीठ, बिना भयवाला, अनुदार तथा क्रूर

कार्य करने वाला, इस प्रकार से आठ दूषण चोरों के कहलाते हैं ॥ २ ॥

चौरस्य पंच चिन्हानि, असद्दृग् चंचलाननः ।

वस्त्वासक्तमना व्यग्र, इतस्ततो निरीक्षणम् ॥ ३ ॥

अर्थ—चोर के निम्नलिखित चार चिन्ह होते हैं। वह अमयुक्त दृष्टि वाला, चंचल मुख वाला, वस्तुओं में आसक्त मन वाला व्यग्र तथा इधर उधर देखने वाला होता है ॥ ३ ॥

भयं भिक्षा वधो दंभः शृंखलापदबंधनम् ।

शूलिकारोपणं मृत्युः, फलानि चौरकर्मणः ॥ ४ ॥

अर्थ—भय, शिक्षा, वध, दण्ड, साकल से पैर बंधे हुए, शूली पर चढने वाला तथा मृत्यु इतने चोरी करने के फल है ॥ ४ ॥

ज्ञातातो विजयस्य चौर्यकरणं संसारसंप्लावनं,

चान्यस्माद्वसुभूतितस्करकथां श्रुत्वा त्यज दूरतः ।

यत्पुण्यं भज रौहिणेयक इव प्रौढं सुखं लिप्ससे,

नोचेद्दुर्ग नियातनाफलमिदं भुंक्ष्व स्वकर्मोदयात् ॥ ५ ॥

अर्थ—ससार में डुबाने वाली, ऐसी विजय करने वाली चोरी जानकर तथा वसुभूति चोर की कथा सुनकर उस चोरी को हे प्राणी तू छोड़ दे। यदि तुमको उत्कृष्ठ सुख की इच्छा हो तो रोहिणेय नाम के चोर के पुण्य को भजो-? नही तो कर्मों के उदय से तुम्हे दुर्गति का फल भोगना पड़ेगा ॥ ५ ॥

परदार प्रकरण

नित्य मनोवचःकायैं, यें परस्त्रीषु लपट ।
सहते स हि दु ख च, श्वभ्रे ताडना दिकम् ॥ १ ॥

- अर्थ—जो मनुष्य हमेशा मन, वचन, और काया से पर स्त्री मे लिपटा रहता है। उस मनुष्य को नरक मे ताडन आदि का दु ख सहन करना पडता है ॥ ५ ॥

रणे फलेच्च वृक्षश्चेत्, सुयश स्यात्कुकर्मणः ।
कुवाक्याच्छ लभते य-त्तदा परस्त्रिय सुखम् ॥ २ ॥

अथ—यदि रेतीले मदान मे वक्ष से फल पैदा होगा, कुकम से यश मिलेगा, कुवचन से सुख मिलेगा, तब ही पर स्त्री सेवन से सुख प्राप्त होगा ॥ २ ॥

इद्रधनुः कराऽस्पृक्च, न वश पवनो यथा ।
तथा दुर्गाह्यमेव स्यात्, परस्त्री हृदय सदा ॥ ३ ॥

अथ—जिस प्रकार इन्द्र के धनुप को हाथ से स्पश नही कर सकते तथा पवन को वश में नही कर सकते, उसी प्रकार पर स्त्री के मन की भी हमेशा पहिचान नही सकते ॥ ३ ॥

लोके दुर्ग्रहता ख्याता, या सार्धसप्तवार्षिकी ।
परस्त्री सैव विज्ञेया, यत प्राप्नोति चापदम् ॥ ४ ॥

अथ—दुनिया में जो साढे सात वष की पनोती प्रसिद्ध है उसी प्रकार उस पर स्त्री को भी जानो, क्योंकि इससे दु ख ही होता है ॥ ४ ॥

त्यजेत्सुखार्थी परदारसंगं,
नोचेत्स पद्मोत्तरवद्द्रवेच्च ।
मतांतरे गौतमतापसस्य,
दारानुरागादभवद्रवेः किम् ॥ ५ ॥

अर्थ—सुख को चाहने वाले मनुष्य को पर स्त्री के संग को त्याग देना चाहिए। नही तो पद्मोत्तर राजा को तरह आपदा होती है तथा अन्य दर्शन मे भी जैसे गौतम ऋषि को स्त्री के अनुराग से सूर्य की क्या दशा हुई ॥ ५ ॥

पाप प्रकरण

भवेयुः प्राणिनः पापा-त्कासश्वासज्वरादयः ।
सखायोऽपि कदर्याश्च, नागश्रीवन्महो तले ॥ १ ॥

अर्थ—पाप से प्राणियों को खांसी, श्वांस, तथा ज्वर आदि की बिमारियाँ होती है। तथा इस पृथ्वी पर नाग श्री की तरह नीच सोवले होती हैं ॥ १ ॥

अमृतं कालकूट स्या-न्मित्रं शत्रुःसुधोरधीः ।
सज्जनोदुर्जनः पापा, द्विपरीतं फलं त्विह ॥ २ ॥

अर्थ—पाप से अमृत जहर होता है, मित्र शत्रु होता है, उत्तम बुद्धि वाला निर्बुद्धि वाला होता है तथा सज्जन दुर्जन होता है। इसी प्रकार पाप से विपरित फल होता है ॥ २ ॥

गुणश्च दोषता याति, पापतो त्वञ्च शून्यताम् ।
ज्ञानमज्ञानतामेव, भ्रमरोगादिव देहिनः ॥ ३ ॥

अर्थ—भ्रम के रोग से किसी प्रकार के पाप से प्राणी के गुण दोषो मे हो जाते है। उदय शून्य की तरह ज्ञात होने लगता है। तथा ज्ञान अज्ञान की तरह हो जाता है ॥ ३ ॥

दुष्टा रामा सुता दुष्टा, दुष्टा परिजना जना ।
भ्रातरो दु खदातार, पापाद्भवंति सर्वदा ॥ ४ ॥

अर्थ—पाप से हमेशा स्त्रियां, पुत्र तथा नौकर भी दुष्ट हो जाते हैं और भाई हमेशा दु ख देने वाला हो जाता है ॥ ४ ॥

श्रीब्रह्मदत्तो नरचक्रवर्ती,
मृत्यागत सोऽपि हि सप्तमी च ।
निर्गत्य तष्माद्भवपङ्कमग्न-
स्तत्रापि हेतु किल पातकस्य ॥ ५ ॥

अर्थ—जिस प्रकार ब्रह्मदत्त चक्री मृत्यु पाकर सातवी नरक मे गये तथा वहां से निकल कर वे ससार रूपी कीचड मे डूबे उस मे भी पाप के कारण जानना चाहिए ॥ ५ ॥

सम्यक्त्व प्रकरण

उपशामिकमेक च, परक्षायोपशामिकम् ।
तृतीय क्षायिक तुर्यं, सासादन च वेदकम् ॥ १ ॥

अर्थ—पहला उपशामिक, दूसरा क्षायोपशमिक, तीसरा क्षायिक, चौथा सास्वादन तथा पांचवा वेदक सम्यक्त्व जानना चाहिए ॥ १ ॥

जैनधर्मे च दक्षत्वं, संस्थैर्योन्नतिभक्तय: ।

तीर्थसेवेति पंचापि, सम्यक्त्वभूषणानि च ॥ २ ॥

अर्थ—जैन धर्म में दक्षता, स्थिरता, उन्नति, भक्ति, तथा तीर्थ सेवा, ये पांच समकित के भूषण हैं ॥ २ ॥

शंकाकांक्षाविचिकित्सा, जैनादन्यस्य संस्तुति: ।

तत्संस्तवोऽपि पंचैव, सम्यक्त्वदूषणानि च ॥ ३ ॥

अर्थ—शंका, कंक्षा, विचिकित्सा, जैन के सिवाय दूसरे की स्तुति और अन्य मत की प्रशंसा, ये पांचों समकित के दूषण है ॥ ३ ॥

मूलं धर्मस्य सम्यक्त्वं, स्वर्गसौख्यफलप्रदम् ।

अनुक्रमेण मोक्षस्य, सुखदं भणितं ध्रुवम् ॥ ४ ॥

अर्थ—धर्म का मूल रूप, ऐसा समकित स्वर्ग का सुख रूपी फल देने वाला है। तथा इसी तरह वास्तव में मोक्ष का सुख देने वाला कहा है ॥ ४ ॥

प्रबोधरत्नं हृदि यस्य नित्यं,

वसेद्वरं तस्ययशोऽपि महान् ।

लभेत पूजामिह मुक्तिमग्रे,
स भूपति श्रेणिकवत्पृथिव्याम् ॥ ५ ॥

अर्थ—जिसके हृदय मे हमेशा उत्तम एव ज्ञान रूपी रत्न बसा हुआ है उन मनुष्यो का इसी पृथ्वी पर यश होता है तथा वे पूजने के लायक हैं और आखिर में वे श्रेणिक राजा की तरह मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥

पुण्य प्रकरण

कातरूप यशोलाभ, विद्वत्व भामिनीसुखम् ।
पूर्णं घन सुत पुण्यात्, प्राप्नुयात् पूर्वसचितात् ॥ १ ॥

अर्थ—पूर्व भव मे सचय किये हुए पुण्य से मनोहर रूप, यश, विद्वता, स्त्री सुख, धन और पुत्र प्राप्त करता है ॥ १ ॥

सभाव्यते ह्यसभाव्या, निजपुण्यप्रभावत ।
दवदत्यास्तिलके य-त्तोजोऽभूत् पूर्वपूण्यत ॥ २ ॥

अर्थ—अपने पुण्य के प्रभाव से असभवित वस्तुएँ भी सभव हो जाती हैं क्योकि पूर्व भव के पुण्य से दमयति के तिलक मे तेज हुआ ॥ २ ॥

राजमान घनाढ्यत्व, सद्गुणाढ्यप्रियासुखम् ।
पूर्णं यशो विवेकित्व, पुण्यद्रुमफलानि च ॥ ३ ॥

अर्थ—राजा की तरफ से मान, धनाढ्यपन, सगुणी स्त्री का सुख, सम्पूर्ण यश तथा विवेक ये सब पुण्य रूपी वृक्ष के फल हैं ॥ ३ ॥

तीर्थंकरत्वं चक्रित्वं, वासुदेवत्वमेव च ।
लभते च नरो भूम्यां, देवत्वं पूर्वपुण्यतः ॥ ४ ॥

अर्थ—पूर्व भव के पुण्य से मनुष्य पृथ्वी पर तीर्थ कर गौत्र, चक्रवर्ती वसुदेव तथा देव आदि पद भी प्राप्त कर सकता है ॥ ४ ॥

श्रीरामचंद्रस्य महाजयोभूत्,
पुण्यात्पुरा रावणसंगरे च ।
पुण्याढ्यराजा परमं प्रतापं,
लेभे बलं तत्र वृषस्य हेतुः ॥ ५ ॥

अर्थ—पूर्व भव मे किये हुए पुण्य से रावण के संग्राम मे श्री श्री रामचन्द्रजी की महान् जय हुई तथा पुण्य प्राप्त किये हुए राजा ने उत्कृष्ट प्रताप तथा बल जो प्राप्त किया है उसका पुण्य ही कारण है ॥ ५ ॥

दान प्रकरण

स्याज्जन्म सफलं तस्य, सफलं चापि जीवितम् ।
यस्य वक्त्रे वसेन्नित्यं, दानमित्यक्षरद्वयम् ॥ १ ॥

अर्थ—जिसके मुख में दान, तिसे दा [illegible] हमेशा बने हुए हैं, उसका जीवन [illegible] है ॥ १ ॥

गजस्तुरगोम्यादि, स्वर्गस्य सुखसंपद ।

[illegible], प्राप्यते दानतो नरैः ॥ २ ॥

अर्थ—दान से मनुष्य को [illegible] पुत्र का सुख, स्वर्ग के सुख का [illegible] सदा पाँच प्रकार के भोग प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

[illegible] [illegible]स्तिस्तथैव च ।

[illegible] पर माता, दानशक्तिः सुदुर्लभा ॥ ३ ॥

अर्थ—पृथ्वी का दान [illegible], सब शक्ति उसी प्रकार [illegible] है किन्तु इन पृथ्वी पर दान शक्ति दुर्लभ है ॥ ३ ॥

दाना[illegible] [illegible], [illegible] च ।

[illegible], [illegible] ॥ ४ ॥

अर्थ—दान [illegible] दिखती है [illegible] [illegible] प्रकार के [illegible] [illegible] है ॥ ४ ॥

[illegible],

[illegible] ।

[illegible],

[illegible] ॥ ५ ॥

अर्थ—जिनके कमल रूपी हाथों से अत्यन्त दान देने की प्रकृति रही है। उनके राजा, दुर्ग के रक्षक, प्रधान सार्थवाह (समुद्र मार्ग से व्यापार करने वाला) आदि सर्प, वाघ, तथा हाथी आदि जलचर, भारंड आदि पक्षी, भूत, प्रेत, पिशाच तथा यक्षों के समूह भी उनके वश मे होते हैं ॥ ५ ॥

शील प्रकरण

हस्तसिद्धिर्वचःसिद्धिः, संपत्तस्य पदे पदे।
श्रीसुदर्शनवद्यस्य, शीलमस्ति समुज्ज्वलम् ॥ १ ॥

अर्थ—जिनके पास सुदर्शन सेठ की तरह उज्जवल शील रहा हुआ है उसको हस्तसिद्धि, वचनसिद्धि तथा पग पग पर संपति मिलती है ॥ १ ॥

कदाग्रहग्रहग्रस्ता, नारदाः क्लेशकारिणः।
लेभिरंतेऽपवर्गं च, तत्र शीलस्य कारणम् ॥ २ ॥

अर्थ—हठ रूपी ग्रह से जकड़े हुए क्लेश कराने वाले नारद भी जिन्होंने मोक्ष पाया है उसमे शील का ही कारण है ॥ २ ॥

अग्निर्जलं द्विपन्मित्र, तालपुटं सुधानिभम्।
सिंधुः स्थलं गिरिर्भूमि, हेतुः शीलस्य तत्र च ॥ ३ ॥

अर्थ—अग्नि जो ठंडी हो जाती, शत्रु मित्र हो जाते हैं, जहर अमृत हो जाता है, समुद्र स्थल हो जाता है तथा पर्वत जो भूमि रूप हो जाता है-उसमे भी शील का ही कारण है ॥ ३ ॥

यन्मत्र सिद्धता याति, तत्र फलति निश्चितम् ।
यत्र कार्यंकर स्याच्च, तत्र शीलविजृम्भितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—जो मत्र सिद्ध हो जाता है, तत्र निश्चय करके फल जाता है तथा यत्र कम करने वाला हो जाता है उसमे भी शील का ही महत्व जानना चाहिए ॥ ४ ॥

प्रभावती चदनबालिका च,
राजीमती द्रुपदराजपुत्री ।
इत्यादिकानामुपसर्गहर्तृ,
शील समाख्यायि जिनै समासु ॥ ५ ॥

अथ—प्रभावती, चन्दनबाला राजीमती तथा द्रोपदी इत्यादि के उपसग हरने वाले जिनेश्वरो के सभा में शील ही कहा हैं ॥ ५ ॥

तप प्रकरण

स्वलालयैव कुष्टोप-शमन दर्शित यत ।
लब्धा सा तपसा लब्धि., सनत्कुमारचक्रिणा ॥ १ ॥

अथ—जिसने अपनी लार से कोढ शात कर दिखाया है वह लब्धि सनत्कुमार चक्री ने तप से प्राप्त हुए हैं ॥ १ ॥

वस्त्रं जलेन पूतं स्या-त्पुनस्तन्मलिनं भवेत् ।

तपसा च कृतः शुद्धो, देहो न स्यान्मलीमसः ॥ २ ॥

अर्थ—वस्त्र जल से पवित्र होता है, परन्तु वह वापस गन्दा भी हो जाता है किन्तु तप से शुद्ध किया हुआ शरीर गदा होता नही ॥ २ ॥

दानेन न च या सिद्धि, मंत्रतंत्रादिभिर्न च ।

सिद्धयति तपसा सिद्धिः, श्री बाहुबलिवत्किल ॥ ३ ॥

अर्थ—जो सिद्धि दान से या मंत्र तंत्र आदि से भी नही होती, वह सिद्धि श्री बाहुवली की तरह वास्तव में तपस्या से सिद्ध हुई है ॥ ३ ॥

तपसा क्षीयते कर्म, केवली कर्मणः क्षयात् ।

वृणुयात्तं च मुक्तिस्त्री-स्तत्र सौख्यं निरंतरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—तप से कर्म क्षय होते हैं, कर्मों के क्षय से प्राणी केवल ज्ञानी होते है तथा उससे मोक्ष रूपी मुक्ति प्राप्त होती है और उन्हें वहाँ निरतर सुख मिलता है ॥ ४ ॥

तंतप्यते यश्च तपोऽभिराम-मटाट्यते नैव भवार्णवं च ।

लंलभ्यते मुक्तिकरं स सद्यो,

द्रढप्रहारीव सुखी च लोके ॥ ५ ॥

अर्थ—जो मनुष्य मनोहर तप तपता है उसको इस भव रूपी समुद्र में भ्रमण करना नही पड़ता और वह तुरन्त ही मोक्ष-

पाता है और दृढ प्रहारी की तरह जगत में वे सुखी होते हैं ॥ ५ ॥

भाव प्रकरण

भव्यैश्च भावना भाव्या, भरते श्वरवद्यथा ।
फलति दानशीलाद्या, वृष्ट्यायथेह पादपा ॥ १ ॥

अर्थ—भव्य लोकों को, भरत राजा की तरह, भावना भानी चाहिए जिस प्रकार वृष्टि से यहाँ वृक्ष फलते हैं वैसे ही दानशील आदि फलते हैं।

पचत्रि पचभिर्याश्च, भावना पचविंशति ।
ताभिर्महाव्रतान्येव, साधयत्यमृत पदम् ॥ २ ॥

अर्थ—पांच और पांच से गुणा करने से भावनाएं पच्चीस प्रकार की है और उन भावनाओं से (मुनि) महाव्रतों की और मोक्ष स्थान की साधना करते हैं ॥ २ ॥

दानेशीले तपस्येव, भावना मिलिता यदि ।
तदा मोक्षसुखाराक्षा, चितनीया जनैरिह ॥ ३ ॥

अर्थ—दान, शील और तप में जो भावना मिली हुई हो तभी इस लोक में मोक्ष सुख की इच्छा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

सर्वतो देशतश्चैव, विरतिः सफला तदा ।
यदा भावयुता लोके, स्वर्गमोक्षसुखप्रदा ॥ ४ ॥

अर्थ—जो भावना से युक्त हो तभी सवसे, और देश से विरक्ति, इस लोक मे सफल हो सकती है तथा स्वर्ग और मोक्ष के सुख को देने वाला हो सकता है ॥ ४ ॥

पट्खंडराज्ये भरतो निमग्न-स्तांबूलवक्त्रः सविभूषणश्च ।
आदर्शहर्म्ये जटिते सुरत्नै,
र्ज्ञानं स लेभे वरभावतोऽत्र ॥ ५ ॥

अर्थ—छः खण्ड के राज्य में आसक्त हुए मुख में तंबुल का पान वाला तथा आभूषण वाला ऐसा भरत महाराज उत्तम रत्नों से जड़ा हुआ ऐसे आदर्श (आरिसा) भुवन मे भी यहाँ उत्तम भाव से केवल ज्ञान प्राप्त किया है ।

पूजा प्रकरण

धनाढ्यत्वं च सौभाग्यं विद्वत्वं सुपरिच्छदः ।
एकछत्रनृपत्वं च, देवपूजा फलं मतम् ॥ १ ॥

अर्थ—धनाढ्य पना, सौभाग्य, विद्वता, उत्तम परिवार, तथा एक छत्री राज्य ये सव देव पूजा के हो फल है ।

दारिद्य मथ दौर्भाग्य, मूर्खत्व दु परिच्छद ।
दुर्मित्र दुर्नृपो दुर्धी, नैते स्युर्देवपूजनात् ॥ २ ॥

अथ—दरिद्रता, दुर्भाग्य, मूखता, दुष्ट परिवार, दुष्ट मित्र, दुष्टराजा तथा दुष्ट बुद्धि ये सब देव पूजा से होते नही ॥ २ ॥

योहि देवार्चन कुर्यात्, सैव हस्त प्रशसक ।
तद्विना च सर्वस्यापि, करो नीरर्थको मत ॥ ३ ॥

अथ—जिस हाथ से देव पूजा की जाती है वही हाथ प्रशसनीय होता है किन्तु बिना देव पूजा वाला हाथ निरथक माना हुआ है ॥ ३ ॥

ये देवा ये पुमासश्च, शुद्धसम्यक्त्वधारिण ।
आप्नुयुर्देवपूजा ते, तिर्यंचो नारका न च ॥ ४ ॥

अर्थ—जो देव तथा पुरुष शुद्ध समकीत को धारण करने वाले हैं उन्हें देव पूजा मिल सकती है । तियच या १ या नारकी नही मिलती ॥ ४ ॥

देवार्चन भव्यजनैर्विधेय, निरतर निर्मल भावयुक्तै ।
सौभाग्यमत्र त्रिदिव परत्र, सुर्याभवन्मुक्तिप्रद क्रमेण॥५॥

अथ—निमल भाव वाले ऐसे भव्य लोगो को पूजा करनी चाहिये जिससे कि यहा सौभाग्य तथा परलोक मे देवलोक मिले, तथा इस तरह करने से सूर्याभकी तरह मोक्ष देने वाला होता है ॥ ५ ॥

गुरू प्रकरण

अयोमयोऽपि यो मर्त्यः, मुवर्णमुकुटोपमः ।
कृतो यगुरुणा नालं, तस्योपकार पूर्तये ॥ १ ॥

अर्थ—लोहे के समान मनुष्य को भी जिसने सुवर्ण के मुकुट के समान वनाया है ऐसे गुरु के उपकार का वदला चुका सकते नही ॥ १ ॥

गुरुः प्रवहणं सम्यक्, संसारार्णवतारणे ।
यथा केशीकुमारोऽभूत्, प्रदेशीनृपतारकः ॥ २ ॥

अर्थ—संसार रूपी समुद्र से तिराने में गुरू उत्तम जहाज के समान है । जिस प्रकार केशी कुमार मुनि प्रदेशी राजा को तारने वाले हुए ॥ २ ॥

हर्म्यज्योतिर्निशाज्योति-रहर्ज्योतिस्ततोऽधिक ।
गुरुज्योतिश्च येनाहं, तेजः पुंजमयः कृतः ॥ ३ ॥

अर्थ—दीपक, चन्द्र तथा सूर्य से भी गुरू रुपा दीपक अधिक तेज है जिसने कि मुझे तेज तारों के समूह की तरह किया हैं ॥ ३ ॥

हर्म्यावलंवनं स्तंभो, दंड़ो वृद्धावलबनम् ।
देहावलंबनं भोज्यं, भव्यावलंबनं गुरुः ॥ ४ ॥

अथ—जिस प्रकार घर के भार का सहारा स्तंभ है वृद्ध का सहारा लकडी है तथा शरीर का सहारा भोजन है उसी प्रकार भव्यो का सहारा एक मात्र गुरु है ॥ ४ ॥

गुरुर्यैश्च लब्धो वरो वीरनाथः,

सदानंदमुख्यैर्दशश्रावकैश्च ।

प्रमादात्तत स्वर्गसौख्यं भजति,

मानुष्य भव प्राप्य मुक्तीश्वरास्ते ॥ ५ ॥

अथ—आनंद आदि जो दस श्रावकों को श्री वीर भगवान् जसे उत्तम गुरु के पास भेजा था वे गुरु की कृपा से स्वर्ग के सुखो का भोग रहे हैं। तथा आखिर मे मनुष्य भव पार कर मुक्ति के स्वामी होंगे ॥ ५ ॥

उद्यम प्रकरण

उद्यमेन विना विद्वन् न सिद्धयति मनोरथा ।

तीर्थंकरपद लेभे, रेवत्युद्यमहेतुत ॥ १ ॥

अथ—हे विद्वान ! उद्यम विना मनोरथ सिद्ध होता नही, क्योंकि उद्यम से ही रेवती ने तीर्थंकर पद प्राप्त किया है ॥ १ ॥

भविष्यती ति यन्द्राव्य, वदत्यालस्यदेहिन ।

ज्ञानिनश्चेति जल्पति, लभेरन् धमनो जयम् ॥ २ ॥

अर्थ—जो होना होगा वही होगा, इस प्रकार आलसी मनुष्य वोलते है और ज्ञानी तो यह कहते हैं कि धर्म से जय मिलती है ॥ २ ॥

तंद्रां विहाय कर्तव्यः, प्राणिभिः सर्वथोद्यमः ।

दानशीलतपोभावाः, सार्थाः स्युर्जिनशासने ॥ ३ ॥

अर्थ—आलस को त्याग कर प्राणियों को सर्व प्रकार से उद्यम करना चाहिये कि जिससे जिन शासन मे दान, शील, तप और भावसार्थक हो ॥ ३ ॥

मौनं कृतं मल्लीजिनेन चात्र,

तप्तं तपश्चादिजिनेन तीव्रं ।

नानोपसर्गाः सहितास्तु वीरैः,

कोऽप्युद्यमं वारयितु समर्थः ॥ ४ ॥

अर्थ—यहीं पर मल्लीनाथ प्रभु ने मौन धारण किया था। आदिनाथ प्रभु ने कड़ी तपस्या की थी तथा वीर प्रभु ने तरह तरह के उपसर्ग सहन किये थे, अतः उद्यम का निवारने में कौन समथ है ? ॥ ४ ॥



॥ ॐ ह्रीं अर्हं नम ॥

श्री सिन्दूरप्रकर

मगलाचरण

शार्दूलविक्रीडितवृत

सिन्दूरप्रकरस्तप करिशिर क्रोडे कषायाटवी-
दावार्चिनिचय प्रबोधदिवसप्रारम्भसूर्योदय ।
मुक्तिस्त्रीवदनैककुड कुमरस श्रेयस्तरो पल्लव-
प्रोल्लास क्रमयोर्नखद्युतिभर पार्श्वप्रभो पातु व ॥१॥

अथ प्रभु पार्श्वनाथ के दोनो पैरो के नखो की कान्ति का समूह तपस्या रूपी हाथी के मस्तक के मध्य भाग मे सिन्दूर के तिलक के समान शोभता है (और) कषायरूपी वन को जलाने के लिये दावानल (अग्नि) के समूह के समान मालूम होता है। (तथा) ज्ञानरूपी दिन का प्रारभ करने को सूर्य के उदय के समान है।[एव] मुक्तिरूपी स्त्री के मुख पर रहे हुए कुकुम के तिलक के सदृश है तथा कल्याणरूपी वृक्ष के लिए नवीन कूपल के समान है। (ऐसा यह कान्ति का समूह) तुम सबो का रक्षण करें॥ १॥

सज्जनों के प्रति ग्रथकर्ता का निवेदन-

शार्दूलविक्रीडितवृत

सन्त सन्तु मम प्रसन्नमनसो वाचा विचारोद्यता
सूतेऽम्भ कमलानि तत्परिमल वाता वितन्वन्ति यत् ।
किवाभ्यर्थनयाऽनया यदि गुणोऽस्त्यासा ततस्ते स्वय,
कर्तार प्रथन न चेदय यश प्रत्यर्थिना तेन किम् ॥ २ ॥

अर्थ-वाणी के विचार करने में तैयार हुए सत्पुरुष मेरे उपर खुशी मनवाने हों। अथवा इस प्रार्थना से क्या मतलब है? क्योंकि, पानी कमल के पुष्पों को पैदा करता है परन्तु उन कमलों की, खुशबु को, वायु ही, इधर उधर फैलाती है। इसलिये अगर इन सूक्तियों में कुछ भी गुण हैं, तो वे सत्पुरुष खुद ही इन सूक्तियों के प्रसिद्धि करने वाले हो जायेंगे और यदि इन सुक्तियों में गुण नहीं है, तो फिर यश को कलंकित करने वाले उस विस्तार से याने सुक्तियों की प्रसिद्धि से क्या फायदा है ॥ २ ॥

त्रिवर्ग में धर्म का प्राधान्य-

उपजातिवृत्त.

त्रिवर्गसंसाधनमन्तरेण, पशोरिवायुर्विफलं नरस्य।
तत्रापि धर्मं प्रवरं वदन्ति, न तं विना यद् भवतोऽर्थ-
कामौ ॥ ३ ॥

अर्थ—त्रिवर्ग याने धर्म, अर्थ, काम इन तीनों की साधना के बिना मनुष्य का जन्म पशु के समान वृथा है। इनमें भी (महात्मा लोग) धर्म को श्रेष्ठ कहते हैं। क्योंकि धर्म के बिना अर्थ और काम नहीं होते हैं॥ ३ ॥

मनुष्य जन्म की दुर्लभता

इन्द्रवज्रावृत्त.

यः प्राप्य दुष्प्राप्यमिदं नरत्वं,
धर्मं न यत्नेन करोति मूढ।

क्लेश प्रव-येन स लब्धमव्धौ,
चिन्तामणि पातयति प्रमादात् ॥ ४ ॥

अर्थ—जो मूख मनुष्य दुख से मिलने योग्य मनुष्य ज-म को पाकर के प्रयत्न पूवक धम को नही करता है वह मूख बडी तकलीफ से प्राप्त हुए चि-तामणि रत्न को गफलत से समुद्र मे गिरा देता है ॥ ४ ॥

भावाथ—जो कठिनता से मिले हुए मनुष्य ज-म को पाकर के भी जो धम का ग्राचरण नही करता है वह महामूख है। तथा वह मानो कठिनता से प्राप्त चिन्तामणि रत्न जसे नर ज-म को यो ही भव सागर मे गवा देता है ॥ ४ ॥

मनुष्य जन्म को व्यर्थ गँवाने वाले की गलतिएँ ।

म-दाका-ता वृत

स्वर्णस्थाले क्षिपति स रज: पादशौच विधत्ते,
पोयूषेण प्रवरकरिणा वाहयत्यैन्धभारम् ।
चिन्तारत्न विकिरति कराद्वायसोड्डायनार्थम् ।
यो दुष्प्राप गमयति मुधा मर्त्यजन्म प्रमत्तः ।५।

भावाथ—जो मनुष्य कीमती सोने के थाल मे यदि धूल भरके रख दे तो उसे दुनियाँ के लोग पागल कहेगे ऐसे ही जो मनुष्य राजा क बैठने योग्य मस्त हाथी पर लक्कडो का बोझ

लाददे अथवा मुश्किल से मिलने वाले अमृत से (जो कि पीने को भी मिलना कठिन है।) अपने पैर धोवे या कौए को उडाने के लिए साधारण पत्थर न फेककर अमूल्य चिन्तामणि रत्न को ही अपने हाथ से फेक दे तो वह भी पागल हो गिना जायेगा। ठीक इसी तरह यदि कोई मनुष्य अपने अनेक जन्मो के सतकर्मों से प्राप्त मनुष्य जन्म को धर्म सेवन न कर व्यर्थ खो देवे तो उसे भी महात्मा लोग मूर्ख गिनते हैं। सारांश यह है कि मनुष्य जन्म पाकर धर्म का संचय जरूर करना चाहिये ॥ ५ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्त.

ते धत्तूरतरुं वपन्ति भवने प्रोनमूल्य कल्पद्रुमं,
चिन्तारत्नमपास्य काचशकलं स्वीकुर्वते ते जडाः।
विक्रीय द्विरदं गिरीन्द्रसदृशं क्रीणन्ति ते रासभं,
ये लब्ध परिहृत्य धर्ममधमा धावन्ति भोगाशया ॥ ६ ॥

साराश—जो मनुष्य उत्तम धर्म सेवन को छोड़ विषयो को सेवता है वह मानो कल्पवृक्ष जैसे वृक्ष को काट कर उसकी जगह अपने घर मे धत्तूरे को लगाता है। रत्न को छोड़ काच के टुकड़े को उठाता है तथा हाथी वेच वदले मे गधा खरीदता है। सारांश मनुष्य जन्म धर्मार्थ है, न कि कामार्थ ॥ ६ ॥

शिखरिणीवृत.

अपारे संसारे कथमपि समासाद्य नृभवं,
न धर्म य. कुर्याद्विषयसुखतृष्णातरलित. ।

म्र्‌डन् पारावारे प्रवरमपहाय प्रवहण,

स मुख्यो मूर्खाणामुपलमुपलब्धु प्रयतते ॥ ७ ॥

सारांश—जो मनुष्य नाना पुण्यो के प्रताप से प्राप्त मनुष्य देह को प्राप्त करके इस भव सागर से पार लगाने वाली जहाज के सदृश धम का सहारा नही लेता है वह महा मूख है ॥७॥

प्रथगत-इकवीस प्रकरणो के नाम

शादूलविक्रीडितवत

भक्ति तीथकरे गुरौ जिनमते सघे च हिंसानृत-

स्तेयाब्रह्मपरिग्रहाद्युपरम क्रोधाद्यरीणा जयम् ।

सौजन्य गुणिसङ्गमिन्द्रियदम दान तपोभावना,

वैराग्य च कुरुष्व निर्वृतिपदे यद्यस्ति गन्तु मन ॥ ८ ॥

अथ—हे भव्य ! यदि मोक्ष पदको पाने की इच्छा हो तो तीथकर प्रभु की तथा गुरु की भक्ति को करो। एव पवित्र जन धम पर तथा जैन सघ पर भी श्रद्धाभाव रक्खो। तथा जीवो को मारना, झूठ बोलना चोरी करना, ब्रह्मचय व्रत का नाश करना, और परिग्रह आदि से विरक्त भाव धारण कर क्रोध लोभ, मोह आदि अ तरग शत्रुओ को जीतना, सज्जनता धारना, गुणवानो की सगति करना, इन्द्रियो का दमन करना, दान दना, तपस्या करना या उसी के समान भावना रखना और वराग्य का सेवन आदि इन इक्कीस नियमो का पालन करो ॥ ८ ॥

इक्कीस नियमों के नाम— १. तीर्थं कर भक्ति. २. गुरु भक्ति, ३. जिनमत भक्ति, ४. जैन सघ पर श्रद्धा. ५. हिंसा त्याग, ६ असत्य त्याग, ७. चौर्य त्याग, ८. विषय भोग त्याग, ९. परिग्रह शाति, १०. क्रोध, ११. मान, १२. माया १३. लोभ आदि शत्रुजय १४. सौजन्य धारण, १५ गुणियो का संग, १६. इन्द्रिय दमन, १७. लक्ष्मी का स्वभाव, १८. दान का उपदेश, १९. तपस्या, २०. वैराग्य की भावना।

जिन पूजन प्रकरण

शार्दूलविक्रीडितवृत.

पापं लुम्पति दुर्गति दलयति व्यापादयत्यापदं,
पुण्यं संचिनुते श्रियं वितनुते पुष्णाति नोरोगताम्।
सौभाग्य विदधाति पल्लवयति प्रीति प्रसूते यशः,
स्वर्गं गच्छति निर्वृति च रचयत्यर्चार्हतां निर्मिता।१।

अथ—श्री अर्हन् भगवानो की की हुई पूजा पाप को काट देती है खराब गति को मिटा देती है, आपत्ति को नष्ट कर देती है, पूण्यो को इक्ट्ठा करती है, लक्ष्मी को फैलाती है, आरोग्यता को पुष्ट कर देती है, सुख को देती है, प्रीति को बढाती है, कीर्ति को उपजाती है, स्वर्ग को देतो है। मोक्ष मार्ग को वनाती है।

शार्दूलविक्रीडितवत

स्वगस्तस्य गृहाङ्गण सहचरी साम्राज्यलक्ष्मी शुभा,
सौभाग्यादि गुणावलिर्विलसति स्वैर वपुर्वेश्मनि ।
ससार सुतर शिव करतलक्रोडे लुठत्यञ्जमा,
य श्रद्धाभरमाजन जिनपते पूजा विधत्ते जन ॥१०॥

अथ—जो मनुष्य श्रद्धायुक्त चित्त से जसे हो वसे ही भगवान जिनेन्द्र की पूजा को करता है उस मनुष्य के घर का आगन स्वग समान हो जाता है। तथा कल्याणकारक साम्राज्य रूप लक्ष्मी (उसकी) साथ रहने वाली स्त्री के समान हो जाती है। उसके देह रूपी घर में सौभाग्य सपत्ति आदि गुणो की पक्ति स्वतत्र जैसे हो वसे विहार करती है तथा उसके लिए ससार रूपी समुद्र सुख से तरने योग्य हो जाता है। और साधन रूप मोक्ष उसके हथेली मे ही झट से लौटने लग जाता है ॥ १ ॥

शिखरिणीवृत

कदाचिन्नातङ्क कुपित इव पश्यत्यभिमुख,
विदूरे दारिद्र्य चकितमिव नश्यत्यनुदिनम् ।
विरक्ता कान्तेव त्यजति कुगति सङ्गमुदयो,
न मुञ्चत्यभ्यर्णं सुहृदिव जिनार्चा रचयत ॥ ११ ॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान की पूजा करने वालो के बीमारी गुस्से मे हो जाती है। जैसे कभी भी सामने नही देखती है। तथा गरीबी भयभीत हो गई हो जैसे हमेशा दूर ही से नष्ट हो जाती है एवं खराब गति विरक्त हुई स्त्री के जैसे सग को छोड़ देती है। और उन्नति मित्र के जैसे समीपताको नही छोड़ती है।

शार्दूलविक्रीडितवृत

यः पुष्पैर्जिनमर्चति स्मितसुरस्त्रीलोचनैः सोऽर्च्यते,
यस्तं वन्दत एकशस्त्रिजगता सोऽर्हनिशं वन्द्यते।
यस्तं स्तौति परत्र वृत्रदमनस्तोमेन स स्तूयतेः
यस्तं ध्यायति क्लृप्तकर्मनिधनः स ध्यायते योगिभिः।१२।

अर्थ—जो पुरुष पुष्पहार से श्री जिनेन्द्र भगवान को पूजता है वह हास्यमुखवाली देवांगनाओ के नयनो से पूजा जाता है। तथा जो जिनेन्द्र भगवान को एकवार वन्दना करता है, रात दिन त्रिलोकी के मनुष्यो द्वारा वन्दित होता है। एव जो उन जिन भगवान को स्तुति करता है। वह परलोक में इन्द्रादिकों के समूह से स्तुति किया जाता है। और जो उन भगवान को ध्याता है वह कर्मो का नाश करके योगी महात्माओं द्वारा भी ध्याया जाता है।

गुरु महत्व प्रकरण

वंशस्थवृत्त

अवद्यमुक्ते पथि यः प्रवर्तते, प्रवर्तयत्यन्यजनं च निस्पृहः।
स एव सेव्यः स्वहितैषिणा गुरुः स्वयं तरंस्तारयितुं क्षमपरम्,

अथ—अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष से वही आचाय सेवने योग्य है जो निर्दोप माग पर चलता है तथा निष्काम होकर दूसरे मनुष्य को भी उस सत्य माग पर चलाता है एव खुद भवसागर से तरता हुआ दूसरो को भी भवसागर से तराने मे समथ है।

मालिनोवत

विदलयति कुत्रोव भोधयत्यागमार्थ,

सुगतिकुगनिमार्गौ पुण्यपापे व्यनक्ति।

अवगमयति कृत्याकृत्यभेद गुरुर्यो,

भवजलनिधिपोतस्त विना नास्ति कश्चित ॥ १४ ॥

अथ—जो आचाय अज्ञान को नाश करता है, शास्त्रो के तत्त्व को समझाता है। सद्गति एव असद्गति के माग स्वरूप पुण्य और पाप को पृथक-पृथक करता है। तथा कृतयाऽकतव्य के भेद का हृदयग मकराता है। उस गुरु के बिना दूसरा कोई भी ससार सागर से पार लगाने वाला जहाज नही है।

साराश—इस ससार मे सत्य के भेद को बताने वाला तथा अपार भवपारावार से पार लगाने वाला जहाज के समान केवल गुरुदेव ही है। ॥ ४ ॥

शिखरिणीवृत

पिता माता भ्राता प्रिय सहचरी सूनुनिवहः,
सुहृत्स्वामी माद्यत्करिभटरथाश्वः परिकरः ।
निमज्जन्तं जन्तुं नरककुहरे रक्षितुमलं,
गुरोर्धर्माधर्मप्रकटनपरात्कोऽपि न परः ॥ १५ ॥

अर्थ—धर्म और अधर्म को बताने वाले गुरु से बढ़कर कोई भी मनुष्य नरक कुण्ड मे डूबते हुए प्राणी को बचाने को समर्थ नही है। ज्यादा क्या खास प्राण प्रिया स्त्री पुत्रो का समूह मित्र (तथा) मदोन्मत्त हाथी, घोडे और योद्धा वाला स्वामी एव अन्य कुटबी जन भी। ऐसे प्राणी को नरक से बचाने मे असमर्थ है।

शार्दूलविक्रीडितवृत

किं ध्यानेन भवत्वशेषविषयत्यागैस्तपोभिः कृतं,
पूर्णं भावनयालमिन्द्रियदमैः पर्याप्तमाप्तागमैः ।
किंत्वेकं भवनाशनं कुरु गुरुप्रीत्या गुरोः शासनं,
सर्वे येन विना विनाथवलवत्स्वार्थाय नालं गुणा।१६।

अर्थ—प्रभु ध्यान से क्या प्रयोजन है। संपूर्ण विषयवासना के त्याग से कुछ मतलब नही तपस्याओ करने से ही सद्भावना से भी कुछ होने का नही। इंद्रियनिग्रह से भी सिद्ध होने का नही। विश्वस्त शास्त्रों से भी आवश्यकता नही। किंतु ससार

रूप सागर को पार लगाने वाला। एक गुरु के आदेश को बडे प्रेम से पालन करो। क्योंकि जिसके बिना सभी गुण बिना मालिक की सेना के जैसे अपना काय सिद्ध करने के लिए भी समर्थ नहीं हैं।

जिनमतप्रकरणम्

शिखरिणीवृत

न देव नादेव न शुभगुरुमेव न कुगुरुं,
नधर्मं नाधर्मं न गुणपरिणद्ध न विगुणम्।
न कृत्य नाकृत्य न हितमहित नापि निपुण,
विलोकन्ते लोका जिनवचनचक्षुर्विरहिता ॥ १७ ॥

अथ—भगवान जिनेन्द्र के उपदेश रूपी आंखो के बिना मनुष्य नही तो अच्छे देव का और नही बुरे देव को। नहीं तो अच्छे गुरु को, नही खराब गुरु को। नही तो धम को और न अधम को। नही गुणवान को और न गुण रहित को। नही तो कतव्य को और न अकतव्य को। नही तो भले को और नही बुरे को। अच्छी तरह से देख सकते हैं ॥ १७ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत

मानुष्य विफल वदन्ति हृदय व्यर्थं वृथा श्रोत्रयो-
र्निर्माण गुणदोपभेदकलना तेपामसभाविनीम्।

दुर्वारं नरकान्धकूपपतनं मुक्ति बुधा दुर्लभां,

सार्वज्ञ: समयो दयारसमयो येषां न कर्णातिथि ॥१८॥

अर्थ—दयारस से ओत-प्रोत भगवान सर्वज्ञ जिनदेव का, उपदेश जिन मनुष्यों के कर्णकुहरों में प्रविष्ट नही हो सका है। पडित लोग उन मनुष्यों के मनुष्य जन्म को फिजूल बताते है। तथा उनका हृदय भी बेमतलब का बताते हैं। उनके कानों की बनावट भी निकम्मी है। उनकी गुण दोषों की निरुपण की व्यवस्था असभवित ही है। उनका नरक के अन्धे कुएं मे गिरना दूर नही हो सकता है। तथा ज्यादा क्या हैं? उन्हे मुक्ति मिलना कठिन है।

शार्दूलविक्रीडितवृत

पीयूषं विषवज्जलं ज्वलनवत्तेजस्तमस्तोमव-

न्मित्रं शात्रववत्स्रजं भुजगवच्चिन्तामरिंग लोष्ठवत्।

ज्योत्स्नां ग्रीष्मजघर्मवत स मनुते कारुण्यपण्यापणं,

जैनेन्द्रं मतमन्यदर्शनसमं यो दुर्मतिर्मन्यते ॥ १९ ॥

अर्थ—जो मूर्ख दया की दुकान के जैसे भगवान जिनदेव के धर्म को दूसरे धर्म के समान ही मानता है, वह मूर्ख अमृत को जहर के सदृश, पानी को अग्नि के समान प्रकाश को अधेरे के तुल्य, हितैषी को दुश्मन के बराबर, पुष्पहार को साप के जैसे, अमूल्य चिन्तामणि नाम के रत्न को ढले के समान तथा चन्द्रमा की निर्मल क्रान्ति को गर्मी की मौसम धूप के समान मानता है।

शादू लविक्रीडितकृत

धर्मं जागरयत्यघ विघटयत्युत्थापयत्युत्पथ,
भि ते मत्सरमुच्छिनत्ति कुनय मथ्नाति मिथ्यामतिम्।
वैराग्य वितनोति पुष्यति कृपा मुष्णाति तृष्णाँ च य-
त्तज्जैन मतमर्चति प्रथयति ध्यायत्यधीते कृती।२०।

अथ—विद्वान् पुरुष जिस जैन धम को पूजते हैं, प्रशसित करता है, ध्याता है और पढाता है। वह जन धम मनुष्य के मानवी कतव्य को जागृत करता है, पाप को नष्ट करता है, कुमार्ग को मिटाता है, ईर्ष्या डाहको दूर करता है। अ याय को उखाड फेंकता है। मिथ्यात्व बुद्धि को मथकर नष्ट कर देता है, वराग्य की भावना को फलाता है, करुणा को पुष्ट करता है, तथा मानसिक मृगतृष्णा को चुरा देता है ॥२०॥

---

(४) सघप्रकरणम्

शादू लविक्रीडितवत

रत्नानामिव रोहणक्षितिधर ख तारकाणामिव,
स्वर्ग कल्पमहोरुहामिव सर पङ्केरुहाणामिव,
पाथोधि पयसामिवेन्दुमहसा स्थान गुणानामसा-
वित्यालोच्य विरच्यता भगवत सघस्य पूजाविधि।२१।

अथ—अमूल्य रत्नो को पैदा करने वाला रोहणाऽचल नाम पहाड के समान ताराओ के लिये आकाश के समान कल्पवृक्षो के

लिये स्वर्ग के समान कमलों के लिये तालाव के समान चन्द्रमा के समान उज्जवल, जलो के लिये समुद्र के जैसा सम्पूर्ण गुणों का जन्म स्थान है। ऐसा सोचकर के भगवत्स्वरूप श्री संघ की पूजन करिये ॥२१॥

शार्दूलविक्रीडितवृत

यः संसारनिरासलालसमतिर्मुक्त्यर्थमुत्तिष्ठते,
यं तीर्थं कथयन्ति पावनतया येनास्ति नान्यः समः ।
यस्मै तीर्थपतिर्नमस्यति सतां यस्माच्छुभं जायते,
स्फूर्तिर्यस्य परावसन्ति च गुणा यस्मिन् स संघोऽर्च्यताम्।२२।

अर्थ—जो (श्री सघ) संसार को छोड़ने के लिये लालसा बुद्धिवाला होता हुआ मोक्ष के लिए प्रयत्न करता है और भाविक लोग जिस सघ को अत्यन्त पवित्र होने से तीर्थ स्वरूप कहते हैं। तथा जिसके बरावर इस संसार मे दूसरा कोई नही है। जिसको तीर्थंकर देव भी नमस्कार करते हैं। जिससे सत्पुरुषों का कल्याण होता है। और जिसकी अति उत्तम महिमा है जिस श्री सघ में अनेका गुण निवास करते हैं उस सघ की तुम पूजा करो ॥२२॥

शार्दूलविक्रीडितवृत

लक्ष्मीस्तं स्वयमभ्युपैति रभसा कीर्तिस्तमालिङ्गति,
प्रीतिस्तं भजते मतिः प्रयतते तं लब्धुमुत्कण्ठया ।

स्व श्रीस्त परिरब्धुमिच्छति मुहुर्मुक्तिस्तमालोकते,
य सघ गुणराशिकेलिसदन श्रेयोरुचि सेवते ॥ २३ ॥

अथ—अपने कल्याण को चाहने वाला जो मनुष्य नाना गुणो के क्रीडा स्थान श्री सव को सेवता है उस मनुष्य को धन दौलत खुद ही प्राप्त होती है। इज्जत उसको जोर से आलिंगन करती है, दिव्य प्रम स्वय ही उसके पास दौडा आता है। बुद्धि उस पुरुष को पाने को इच्छा पूवक प्रयत्न करती है। स्वग लोक की राज्यलक्ष्मी उसको भेटने को चाहती है और मोक्ष उसको वारवार देखता है ॥ २३ ॥

शादूलविक्रीडितवत

यद्भक्ते फलमर्हदादिपदवी मुख्य कृषे सस्यव-
च्चक्रित्वत्रिदशेन्द्रतादि तृणवत्प्रासङ्गिक गीयते ।
शक्ति यन्महिमस्तुतौ न दधते वाचोऽपि वाचस्पते,
सघ सोऽघहर पुनातु चरणन्यासैः सता मन्दिरम।२४।

अथ—खेतो के लिए धान्य की तरह जिस श्री सघ की भक्ति का प्रधान लाभ तीथ कर आदि दुलभ पद को पाना है और सार्व भौम चक्रवर्तीपना तथा इन्द्रपद आदि तो घास की तरह गौण गिना जाता है। जिसकी महिमा की स्तुति करने में स्वय देव गुरु बृहस्पति की वाणी भी ताकत को नही रखती है। पापो को हरने वाला वह श्री सघ अपने पैरा रखकर सत्पुरुषो के घरो को पवित्र करें ॥ २४ ॥

(५) अहिंसा प्रकरणम्

शार्दूलविक्रीडितवृत

क्रीडाभूः सुकृतस्य दुष्कृतरजः संहारवात्याभवो-
दन्वन्नौर्व्यसताग्निमेघपटली सकेतदूती श्रियाम् ।
निःश्रेणिस्त्रिदिवौकसः प्रियसखी मुक्तेः कुगत्यर्गला
सत्त्वेषु क्रियतां कृपैव भवतु क्लेशैरशेषैः परैः ॥२५॥

अर्थ—पुण्य की क्रीड़ास्थली पापरुप रज को उड़ाने वाली आँधी, ससार सागर से पार लगाने वाली नाव दु·खरुप-दावाऽनल को बुझानेवाली घनघोर घटा, सौभाग्य को मिलाने वाली स्वर्ग की निसरणी ! मुक्ति की प्यारी साथिन, दुर्गति की आगल सरीखी दया हो प्राणियो पर करो । दूसरे कष्टो से कुछ भी न हाना है । ॥ २५ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत

यदि ग्रावा तोये तरति जरणिर्यद्युदयति,
प्रतीच्यां सप्तार्चिर्यदि भजति शैत्य कथमपि ।
यदि क्ष्मापीठं स्यादुपरि सकलस्यापि जगत ,
प्रसुते सत्त्वानां तदपि न वध. क्वापि सुकृतम् ॥ २६ ॥

अर्थ—पत्थर की चट्टान भी शायद पानी पर तरजायँ, सूर्य शायद पश्चिम मे उदय हो जायं, किसी प्रकार शायद अग्निदेव

भी ठडे हो जाये, शायद पथ्वी मडल भी समूचे ससार के ऊपर हो जायें। परतु तो भी प्राणियो की हिंसा कही पर भो पुण्य को पैदा नही करती हैं। ॥ २६ ॥

मालिनीवृत

स कमलवनमग्नेर्वासर भास्वदस्ता-
दमृत्तमुरगवक्त्रात् साधुवाद विवादात् ।
रुगपगममजीर्णाज्जिवीवित कालकूटा-
दभिलपति वधाद्य प्राणिना धर्ममिच्छेत् ॥ २७ ॥

अथ—जो जीवा को मारने से धम को चाहता है, वह (मानो) अग्नि के अदर से कमला के वन की उत्पति को, अस्त होते हुए सूय से दिन की उत्पति को, सप के मुह से अमृत को, लडाई स शाबाशी को, अजीण से रोग की शाति को और कालकूट नाम के भयकर विष से जीवन को चाहता है ॥२७॥

शादू र्लविक्रीडितवत

आयुर्दीर्घतर वपुर्वरतर गोत्र गरीयस्तर,
वित्त भूरितर बल बहुतर स्वामित्वमुच्चैस्तरम् ।
आरोग्य विगतातर त्रिजगति श्लाघ्यत्वमल्पेतर,
ससाराम्बुनिधि करोति सुतर चेत कृपार्द्रान्तरम् ॥२८॥

अथ—कृपा से भीजा हुआ अत करण (मनुष्य की) आयुष्य को लबी करता है। शरीर को सुदर करता है, वश को महीमा

वाला करता है, धन को बढा देता है, ताकत को अधिक करता है, मालिकपने को बहुत ऊँचा करता है। तंदुरस्ती को निरन्तर रहने वाली करता है। तीनो लोको मे अतिशय प्रशमा को करता है। और ससार रुपी समुद्र को सुख से तरने योग्य करता है। ॥ २८ ॥

सत्यप्रकरणम्

शार्दूलविक्रीडितवृत.

विश्वासायतनं विपत्तिदलनं देवैः कृताराधनं,
मुक्तेःपथ्यदनं जलाग्निशमनं व्याघ्रोरगस्तम्भनम्,
श्रेयः संवननं समृद्धिजननं सौजन्यसंजीवनम्,
कीर्तेः केलिवनं प्रभावभवनं सत्यं वचः पावनम् ॥२९॥

अर्थ—विश्वास का स्थान विपत्ति को दूर करने वाला देवताओं से भी आराधना किया हुआ मुक्ति के मार्ग मे खुराक (भातारुप) जल और अग्नि का शमन करने वाला, व्याघ्र और सर्प को रोकने वाला कल्याण को वशीभूत करने वाला, सज्जनता को जिलानेवाला, कीर्त्ति को क्रिड़ोद्यान और महिमा का आगार पवित्र एक सत्य वचन ही है ॥ २९ ॥

शिखरिणीवृत

यशो सस्माद्भस्मीभवति वनवह्नेरिव वनं,
निदानं दुःखानां यदवनिरुहाणां जलमिव।

न यत्र स्याच्छायाऽनप इव तप सयमकथा,
कथचित्तन्मिथ्यावचनमभिधत्ते न मतिमान् ॥ ३० ॥

अर्थ—दावाऽनल से जसे जगल राख मय हो जाता है वैसे ही असत्य भाषण से कीर्ति नष्ट हो जाती है और जो असत्य भाषण वृक्ष के लिए जल के जसे दु खों का प्रधान कारण है और जहां धूप मे छाया के जैसे तपस्या और इन्द्रियनिग्रह की बात तक नहीं है। ऐसे उस असत्य भाषण का बुद्धिमान आदमी किसी से भी नही कहता है ॥ ३० ॥

वशस्थवृत्त

असत्यमप्रत्ययमूलकारण, कुवासनाद्म समृद्धिवारणम् ।
विपन्निदानपरवञ्चनोर्जित, कृतापराध कृतिभिर्विवर्जितम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—अविश्वास का प्रधान कारण बुरी वासनाओं का स्थान, उपत्ति और सुख समृद्धि को रोकने वाला। आपत्ति का मुख्य कारण दूसरे को ठगने में समर्थ तथा अपराध युक्त, ऐसा असत्य मिथ्या भाषण पडितो से त्याज्य है ॥ ३१ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्त

तस्याग्निर्जलमर्णव स्थलमरिर्मित्र सुरा किङ्करा,
कान्तार नगर गिरिर्गृहमहिर्माल्य मृगारिर्मृग ।
पाताल बिलमस्त्रमुत्पलदल व्याल शृगालो विष,
पीयूष विषम सम च वचन सत्याञ्चित वक्ति य ॥३२॥

अर्थ—जो पुरुष सत्य युक्त वचन कहता है उसके लिए आग पानी की तरह शीतल हो जाती है अथाह समुद्र जमीन के समान हो जाता है, दुश्मन भी दोस्त के सदृश्य हो जाता है, सब देवता भी नौकरों के तुल्य हो जाते हैं बीहड़ जंगल भी शहर के समान हो जाता है, पहाड़ के घर तुल्य हो जाता है, सांप पुष्प माला के समान हो जाता है, सिंह हरिण के अनुरूप हो जाता है, भयंकर पाताल साधारण छिद्र के तुल्य हो जाता है, तीक्ष्ण धार अस्त्र (तलवार आदि) भी कमल हो जाता है, दल के समान सुक्ष्म हो जाता है, पागल हाथी सियार के सदृश्य उल्टा उससे डरने वाला हो जाता है। जहर अमृत के तुल्य हो जाता है उसी प्रकार उल्टा भी सुल्टा हो जाता है ॥ ३२ ॥

अस्तेय प्रकरणम्

मालिनीवृत्त

तमभिलपति सिद्धिस्तं वृणीते समृद्धि—
स्तमभिसरति कीर्तिर्मुञ्चते तं भवार्तिः ।
स्पृहयति सुगतिस्तं नेक्षते दुर्गतिस्तं,
परिहरति विपत्तं यो न गृह्णात्यदत्तम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—जो मनुष्य नहीं दिया हुआ ग्रहण नहीं करता है। आपत्ति उस पुरुष को छोड़ देती है। बुरी गति उसकी तरफ

नही देखती है। सद्‌गति उसको चाहती है। ससार की सारी पीडाएं उसको छोड देती है। यश उसकी ओर आना है सुख सपति उसको अगीकार करती है और अणिमादिक आठ सिद्धिए उसकी अभिलाषा करती हैं ॥ ३३ ॥

शिखरिणीवृत

अदत्ता नादत्ते कृतसुकृतकाम किमपि य
शुभश्रेणिस्तस्मिन् वसति कलहसीव कमले।
विपत्तस्माद्दूर व्रजति रजनीवाम्बरमणे–
विनीत विद्येव त्रिदिवशिवलक्ष्मीर्भजति तम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—जिसने पुण्य प्राप्त करने का मनोरथ किया है कुछ भी नही दिया हुआ नही ग्रहण करता है उस पुरुष के अन्दर कल्याण की पक्ति कमल वन मे कलहस पक्षी की स्त्री के जैसे निवास करती है। तथा उस पुरुष से सकट दूर रहता है। सूर्य से रात दूर जाती है तथा त्रलोक्य की शुभ राज्य लक्ष्मी भी ज्ञान नम्रता को प्राप्त हो जाती है जसे उस पुरुष को भजती सेवती है ॥ ३४ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत

यन्निर्वर्तितकीर्तिधर्मनिधन सर्वागसा साधन,
प्रान्मीलद्वधबन्धन विरचितक्लिष्टाशयोद्बोधनम्।
दौगत्यैकनिबन्धन कृतसुगत्याश्लेषसरोधन,
प्रोत्सर्पत्प्रधन जिघृक्षति न तद्धीमानदत्त धनम् ॥ ३५ ॥

(८) शीलप्रकरणम्

शादूलविक्रीडितवृत

कामात्त स्त्यजति प्रबोधयति वा स्वस्त्री परस्त्री न यो
दत्तस्तेन जगत्यकीर्तिपटहो गोत्रे मपीकूर्चक–
श्चारित्रस्य जलाञ्जलिर्गुणगणारामस्य दावानल ,
सकेत सकलापदा शिवपुरद्वारे कपाटो दृढ ॥ ३७ ॥

अर्थ—जो कामासक्त पुरुष अपनी पत्नी का नही समझाता है और परायी पत्नी को नही छोडता है, उस पुरुष ने ससार मे अपयश का नगाडा बजाया है और अपने कुल मे कालिख का पोता लगाया है, एव सच्चारित्र के ऊपर पानी की अ जलि रेल दी है, तथा गुणो के समूह रूप उपवन के लिए दावाग्नि के सदृश्य ही सपूर्ण आपत्ति के लिए इशारे का स्थान है। शिव मोक्ष मार्ग के द्वार पर मजबूत किवाड के समान हैं अर्थात् मोक्ष जाने का द्वारा उसके लिए ब द है। ३७॥

शादूलविक्रीडितवत

व्याघ्रव्यालजलानलादिविपदस्तेषा व्रजन्ति क्षय,
कल्याणानि समुल्लसन्ति विवुधा सान्निध्यमध्यासते ।
कीर्ति स्फूर्तिमियर्ति यात्युपचय धर्म प्रणश्यत्यघ,
स्वर्निर्वाणसुखानि सनिदधते ये शीलमाविभ्रते ॥ ३८ ॥

अर्थ - जो मनुष्य सच्चरित्र को धारण करते हैं। उन पुरुषों की व्याघ्र, साँप, जल, अग्नि आदि की विपत्तिएं नष्ट हो जाती हैं। कल्याण के कर्म विकसित हो जाते है। देवता लोग उनके पास आने को करते है। बड़ाई फैलाव को प्राप्त होती है। उनका धर्म भी वृद्धि को प्राप्त होता है। पाप नष्ट हो जाते है, तथा स्वर्ग और मोक्ष इनके सुख भी शीलधारी पुरुष को प्राप्त होते हैं ॥ ३८ ॥

मालिनीवृत्त

हरति कुलकलङ्कं लुम्पते पापपङ्कं,
सुकृतमुपचिनोति श्लाघ्यतामातनोति ।
नमयति सुरवर्गं हन्ति दुर्गोपसर्गं
रचयति शुचि शीलं स्वर्गमोक्षौ सलीलम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—सत् चरित्र, खानदान के कलक को हरण करता है। पापरूपी कीचड़ को धो डालता है, पुण्यों को बढ़ाता है, प्रशंसा को फैलाता है, देवताओं को भी झुकादेता है, भयकर उपद्रवों को मिटा देता है, स्वर्ग और मोक्ष को भी लीला से ही जमे हो तैसे बना देता है ॥ ३९ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्त

तोयत्यग्निरपि स्त्रजत्यहिरपि व्याघ्रोऽपि सारङ्गति,
व्यालोऽप्यश्वति पर्वतोऽप्युपलति क्ष्वेडोऽपि पीयूषति ।

निघ्नोऽप्युत्सवति प्रियत्यरिरपि क्रीडातडागत्यपां–
नाथोऽपि स्वगृहत्यव्यपि नृणां शीलप्रभावाद् ध्रुवम् ॥४०॥

अर्थ—मनुष्यों के सत्स्वभाव के प्रताप से निश्चय करके आग भी पानी के समान शीतल बन जाता है। सांप भी माला के समान शोभायमान बन जाता है। खूंखार बाघ भी हरिण के समान सीधा बन जाता है। दुष्ट हाथी भी घोटे से तुल्य सुखारोह हो सकता है। ऊँचा पहाड भी छोटे पत्थर के सदृश हो जाता है। जहर भी अमृत बन जाता है। उपद्रव भी उत्सव के सरीखा हो जाता है। शत्रु भी मित्र के समान हो जाता है। समुद्र भी क्रीडा सरोवर बन जाता है, और जंगल भी अपना घर हो जाता है ॥ ४० ॥

---

(९) परिग्रहत्यागप्रकरणम्

शार्दूलविक्रीडितवृत्त

कालुष्यं जनयन् जडस्य रचयन् धर्मद्रुमोन्मूलनं,
क्लिश्यन्नीतिकृपाक्षमाकमलिनीर्लोभाम्बुधिं वर्धयन्।
मर्यादातटमुद्रुजन् शुभमनोहंसप्रवासं दिशन्–
न्किं न क्लेशकरः परिग्रहणदीपूरः प्रवृद्धिं गतः ॥ ४१ ॥

अर्थ—वृद्धि को प्राप्त हुआ परिग्रह याने हर एक वस्तु का विशेष संग्रह वह मानो एक तरह की नदी उसका प्रवाह मूर्ख पुरुष के चित्त में पाप प्रकृति को उपजाता हुआ, तथा धर्मरुपी वृक्ष का नाश करता हुआ एवं नीति, कृपा और क्षमा रुपी कमलों की वनावली को मुरझाता हुआ लोभ रुपी समुद्र को बढ़ाता हुआ और भी मर्यादा रुपी तीर को तोड़ता हुआ एव सात्विक विचार रुपी हंस को परदेश भेजता हुआ क्या दुख पैदा करने वाला नहीं है ? अपितु ऐसा परिग्रह जरुर दुःखदायी ही है ॥ ४१ ॥

मालिनीवृत्त

कलहकलभविन्ध्यः क्रोधगृध्रश्मसानं,
व्यसनजगभुरंध्रं द्वेपदस्युप्रदोषः ।
सुकृतवनदवाग्निर्मार्दवाम्भोदवायु—
र्नयनलिनतुपारोऽत्यर्थमर्थानुरागः ॥ ४२ ॥

अर्थ—अत्यन्त ज्यादा परिग्रह का प्रेम कलह लड़ाई रुपी हाथी के वच्चे के लिए विन्ध्याचल पहाड़ के समान है क्रोध रुपी गीध के लिये मसाण के तुल्य है। दुःख रुपी सांप के लिये विल के सदृश है। द्वेषरुपी चोर को सुख देने के लिये रात के शुरुआत के समान है। पुण्य रुपी वन को जलाने के लिये दावानल अग्नि है। सज्जनता रुपी वादल के लिए वायु है और न्याय रुपी कमल के लिए वर्फ के सदृश है ॥ ४२ ॥

शादू लविक्रीडितकृत

प्रत्यर्थी प्रशमस्य मित्रमधृतेर्मोहस्य विश्रामभू ,

पापाना खनिरापदा पदममद्ध्यानस्य लीलावनम् ।

व्याक्षेपस्य निधिर्मदस्य सचिव शोकस्य हेतु कले ,

केलिवेश्म परिग्रह परिहृतेर्योग्यो विविक्तात्मनाम् ॥४३॥

अर्थ—जो शान्ति का शत्रु है, अधीरता का मित्र है, अज्ञान का विश्राम स्थान है, पापो की खान है, आपत्तियो का स्थान है, बुरे विचारो का खेलने का बगीचा है, घबराहट का खजाना है, पागलपन (अभिमान) का मत्री है, दु:ख का कारण है और लडाई का क्रीडा निकेतन है । ऐसा वह अधम परिग्रह ससार त्यागियो के वास्ते सवथा छोडने के लायक है ॥४३॥

शादू लविक्रीडितवत

वह्निस्तृप्यति नेधनैरिह यथा नाम्भोभिरम्भोनिधि–

स्तद्वल्लाभघनो घनैरपि धनैर्जन्तुर्न सतुष्यति ।

नत्वेव मनुते विमुच्य विभव नि शेषमन्य भव,

यात्यात्मा तदह मुधैव विदधाम्येनासि भूयासि किम् ॥४४॥

अर्थ—जैसे इस ससार मे अग्नि काष्ठ आदिक से तृप्त नही होती है और समुद्र जसे पानी से तृप्त नही होता है। वसे ही अत्यन्त लोभी प्राणी बहुत ज्यादा भी धन से सतुष्ट नही होता

है फिर भी इस तरह नहीं विचारता है कि यह जीव सपूर्ण धन को यही छोड़कर दूसरे भव को प्राप्त होता है तो मैं व्यर्थ ही इतने ज्यादा पापो को क्यो करू ? ।।४४।।

---

(१०) क्रोधत्याग प्रकरणम्

शार्दूलविक्रीडितवृत

यो मित्रं मधुनो विकारकरणे संत्राससंपादने,
सर्पस्य प्रतिबिम्बमङ्गदहने सप्तार्चिषः सोदरः ।
चैतन्यस्य निषूदने विषतरोः सब्रह्मचारी चिरं,
स क्रोधः कुशलाभिलाषकुशलैः प्रोन्मूलमुन्मूल्यताम् ।।४५।।

जो क्रोधः विगाड़ करने मे तो शराब का दोस्त है, भय पैदा करने में सांप का प्रतिविम्व है, शरीर को जलाने में अग्नि का सगा भाई है, चेतनता को दूर करने मे विष वृक्ष का सहपाठी है। ऐसा वह क्रोध अपना कुशल चाहने वाले पुरुषों से जड़ से जंसे हो तैसे उखाड़ कर फेकना चाहिए ।।४५।।

हरिणीवृत

फलति कलितश्रेयः श्रेणीप्रसूनपरम्परः,
प्रशमपयसा सिक्तो मुक्ति तपश्चरणद्रुमः ।
यदि पुनरसौ प्रत्यासत्ति प्रकोपहविर्भुजो–
भजति लभते भस्मीभावं तदा विफलोदयः ।। ४६ ।।

अर्थ—यह तपश्चर्यारूपी वृक्ष को यदि शान्तिरूपी पानी से सींचा जाय तो सुन्दर कल्याण की श्रेणी रूपी पुष्प परम्परा से युक्त हो सके। मुक्ति रूपी फल को उत्पन्न करता है परन्तु यह भी यदि क्रोध रूपी अग्नि की समीपता को सेवता है। तो फल रहित होकर उल्टा भस्मीभूत हो जाता है याने जलबल के राख हो जाता है। साराश यह है कि तपस्या शान्ति से सफल होती है और क्रोध से बिल्कुल नष्ट हो जाती है। अत मुक्ति चाहने वाले के लिए यह योग्य है कि वे क्रोध का परित्याग कर शान्ति को धारण करें ॥४६॥

शार्दूलविक्रीडितवृत

सताप तनुते भिनत्ति विनय सौहार्दमुत्सादय-
त्युद्वेग जनयत्यवद्यवचन सूते विधत्ते कलिम्।
कीर्ति कृन्तति दुर्मति वितरित व्याहन्ति पुण्योदय,
दत्ते य कुगति स हातुमुचितो रोष सदोष सताम् ॥४७॥

अर्थ—जो क्रोध सन्ताप को फैलाता है नम्रता को दूर करता है मित्र भाव को मिटाता है, दुख को पैदा करता है, झूठे भाषण को उत्पन्न करता है, कलह करता है, कीर्ति को काटता है दुष्ट बुद्धि को बढाता है, पुण्य के उदय को रोकता है और दुर्गति को प्रदान करता है, वह क्रोध दोषयुक्त है। अत सत्पुरुषों के लिए छोडने योग्य है ॥४७॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्त

यो धर्मं दहति द्रुमं दव इवोन्मथ्नाति नीतिं लतां,
दन्तीवेन्दुकलां विधुन्तुद इव क्लिश्नाति कीर्तिं नृणाम्।
स्वार्थं वायुरिवाम्बुदं विघटयत्युल्लासयत्यापदं,
तृष्णां घर्म इवोचितः कृतकृपालोपः स कोपः । थम् ॥४८॥

अर्थ—जिस प्रकार वन की अग्नि वृक्ष को जलाती है उसी प्रकार क्रोध धर्म को जलाता है। हाथी वेल की तरह जो नीति (न्याय) को मथता है, राहु चन्द्रमा की कला को मनुष्यों की कीर्ति को घटाता है, हवा वादल की तरह स्वार्थ को छिन्न भिन्न करती है, तथा गर्मी प्यास की तरह जो आपत्ति को बढाती है, और जिसने कृपा का लोप किया है उसमें वह क्रोध कैसे योग्य है। किसी तरह भी क्रोध धारण करना योग्य नहीं है ॥४८॥

---

(११) मानत्याग प्रकरणम्

मन्दाक्रान्तावृत्त

यस्मादविर्भवति विततिर्दुस्तरापन्नदीनां,
यस्मिन् शिष्टाभिरुचितगुणग्रामनामापि नास्ति।
यश्च व्यासं वहति वधधीधूम्यया क्रोधदावं,
त मानाद्रि परिहर दुरारोहमौचित्यवृत्तेः॥ ४९ ॥

अर्थ—जिससे दुस्तर दुःख से तरने योग्य आपत्ति रूपी नदियों का झुण्ड प्रकट होता है, जिसमे शिष्ट भले मनुष्यो के मन पसंद गुणों के समूह का नाम भी नही है और जो हिंसा बुद्धिरूपी धुम्राकार से युक्त क्रोध रूपी दावाऽनल (वन की अग्नि) को धारण करता है। उस योग्य व्यवहार के लिये दुःख से भी नही चढने योग्य। मिथ्या अभिमानी पहाड को छोड दे ॥४६॥

शिखरिणीवृत्त

शमालान भञ्जन् विमलमतिनाडि विघटय-
किरन्दुर्वाक्पांसूत्करमगणयन्नागमसृणिम्।
भ्रमन्नुर्व्या सर्वैर विनयनयवीथिं विदलय-
ञ्जन क नानर्थं जनयति मदान्धो द्विप इव ॥ ५० ॥

अर्थ—मिथ्याऽभिमान से अन्धा हुआ मनुष्य मदोन्मत्त हाथी के जैसे शान्ति रूपी बन्धन स्तंभ को तोडता हुआ निर्मल बुद्धि रुपी रस्सी को तोडता हुआ दुष्ट वाणी रुपी धूल की ढुगली का उडाता हुआ, आगम सिद्धान्त शास्त्र रूपी अंकुश को नही धारता हुआ, पृथ्वी तल पर स्वतन्त्रता पूर्वक घूमता हुआ, नम्रता और न्याय रूपी मार्ग को उजाडता हुआ, किस जुल्म को पैदा नही करता है। अर्थात सभी जुल्मों को पैदा करता है ॥५०॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्त

औचित्याचरण विलुम्पति पयोवाह नभस्वानिव
प्रध्वंस विनय नयत्यहिरिव प्राणस्पृशा जीवितम्।

कीर्ति कैरविणीं मतजङ्ग इव प्रोल्लासयत्यञ्जसा
मानो नोच इवोपकारनिकरं हन्ति त्रिवर्गं नृणाम् ॥५१॥

अर्थ—मिथ्याऽभिमान मनुष्यो के धर्म, अर्थ और काम को नष्ट कर देता है, (जैसे कि) नीच आदमी (अपने साथ किये गये) उपकारो के समूह को भूला देता है।

मान— श्रेष्ठ व्यवहार को मिटा देता है (जैसे कि) वायु बादलो को मिटाती है।

फिर मिथ्यामान क्या करता है? बताते है।

विनय-नम्र आचरण को नष्ट कर देता है (जैसे कि) सांप सपूर्ण जीव धारियो के जीवन को डश कर अपने जहर से नाश करता है।

फिर क्या करता है? सो भी कहते है।

अर्थ—मनुष्यो के उज्जवल यश को एकदम मैला कर देता है (जैसे कि) हाथी कमल के पौधे को (उखाड) कुम्हला देता है ॥ ५१ ॥

वसन्ततिलकावृत

मुष्णाति य. कृतसमस्तसमीहितार्थ,
संजोवनं विनयजोवितमङ्गभाजाम्।
जात्यादिमानविषज विषमं विकारं,
तं मार्दवामृतरसेन नयस्व शान्तिम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—जो मिथ्याऽभिमान शरीर धारियो ने किया है उन्होने सपूर्ण मनोरथो को सिद्ध करने वाले और सजीवनी

वृक्ष के उत्तम गुण करने वाले नम्रता रूपी जीवन का नाश कर दिया है। अतः हे अभिमानी जाति कुल और गोत्र के मिथ्या गारवी चित्त में पैदा होने वाले अत्यन्त उग्र विकार को शान्तता रूपी अमृत से शान्त कर ॥ ५२ ॥

१२—मायात्याग प्रकरणम्

मालिनीवृत्त

कुशलजननवन्ध्यां सत्यसूर्यास्तसन्ध्यां,

कुगतियुवतिमालां मोहमातङ्गशालाम् ।

शमकमलहिमानीं दुर्यशोराजधानीं,

व्यसनशतसहायां दूरतो मुञ्च मायाम् ॥ ५३ ॥

अर्थ—कुशलता को उत्पन्न करने में वन्ध्या (बांझ स्त्री) के समान, सत्य रूपी सूर्य को अस्त कर देने में सांध्यकाल के समान, खराब गति रूपी स्त्री के पहिनने की माला के समान, मोह रूपी हाथी को बांधने के लिए गज शाला के समान, शान्ति रूपी कमल को नष्ट करने के लिए बर्फ की वर्षा के समान, अपयश (बदनामी) की राजधानी (प्रधान नगरी के रहने के स्थान नगरी) के समान, सैकड़ों दुःखों की सहायता करने वाली ऐसी माया को हे भव्यजन ! तू दूर से ही छोड़ दे ॥ ५३ ॥

उपेन्द्रवज्रावृत

विधाय मायां विविधैरुपायैः, परस्य ये वञ्चनमाचरन्ति ।
ते वञ्चयन्ति त्रिदिवापवर्ग-सुखान्महामोहसखाः स्वमेव ।५४।

अर्थ—जो मनुष्य तरह २ के उपायों से माया जाल को करके दूसरे को ठगते हैं वडे भारी अज्ञान के साथी है तथा वे माया वाले मनुष्य जो स्वयं अपने आप को ही स्वर्ग और मोक्ष के सुख से दूर रखते है अर्थात जो मनुष्य स्वार्थ के लिए माया जाल द्वारा दूसरो को ठगता है वह परवंचना के पाप से स्वर्ग और मोक्ष का अधिकारी नही वन सकता है अतः स्वय ही अपने आप से ठगा जाता है ॥ ५४ ॥

इन्द्रवज्रावृत

मायामविश्वासविलासमन्दिरं,
दुराशयो यः कुरुते धनाशया ।
सोऽनर्थसार्थं न पतन्तमीक्षते,
यथा विडालो लगुडं पयः पिवन् ॥ ५५ ॥

अर्थ—जो दुष्ट अतःकरण वाला मनुष्य धन कमाने की इच्छा से अविश्वास की क्रीड़ा स्थली माया (कपट) को करता है वह मनुष्य अपने ऊपर गिरते हुए आपत्ति के समूह को नही देखता है । जैसे दूध को पीता हुआ बिलाड़ा लाठी को नही देख सकता । किसी वर्तन मे रखे हुए दूध को नीचा मुँह करके जब बिल्ली

पान मगाते है, तो फिर पीछे से आकर कोई लाठी मारे तो वह लाठी उन्हे दीख नहीं पड़ती तद्वत् राई धन कमाने की इच्छा से नाना कपट का करता है परन्तु उस कपट व पाप से होने वाले भवान्तिम दुःख उसे उस वक्त पता नहीं पड़ता है ॥ ५५ ॥

वसन्ततिलकावृत्त

मुग्धप्रतारणपरायणमुज्जिहीते,

यत्पाटव कपटलम्पटचित्तवृत्ते ।

जीर्यत्युपप्लवमवश्यमिहाप्यकृत्वा

नापथ्यभोजनमिवामयमायतौ तत् ॥ ५६ ॥

[illegible] पुरुष किसी कपट से [illegible] हुई [illegible] है [illegible] प्राप्त होता है। [illegible] [illegible] पूर्वक किये बिना नहीं रह सकता है। [illegible] बिगड़ [illegible] रोग [illegible] है।

[illegible] है ॥ ५६ ॥



(१३) लोभ प्रकरणम्

शार्दूलविक्रीडितवृत

यद्दुर्गामटवीमटन्ति विकटं क्रामन्ति देशान्तरं,
गाहन्ते गहनं समुद्रमतनुक्लेशां कृपि कुर्वते ।
सेवन्ते कृपणं पति गजघटासंघट्टदु:संचरं,
सर्पन्ति प्रधनं धनान्धितधियस्तल्लोभविस्फूर्जितम् ॥५७॥

अर्थ—धन के लोभ से अंधबुद्धि वाले लोग जिस कारण से अगम्य जगलों में भ्रमण करते हैं। भयंकर देश परदेश में घूमते है। ज्यादा दुखो वाली खेती को करते हैं। दु.सचरम् हाथियों की घटा की भीड से नही जाने योग्य ऐसे कंजूस पति के पास जा के भी उसकी सेवा करते है तथा मृत्यु तक को आलिगन करते हैं। वह सब लोभ का ही फल है ॥ ५७ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत

मूलं मोहविषद्रुमस्य सुकृताम्भोराशिकुम्भोद्भव:,
क्रोधाग्नेररणि: प्रतापतरणिप्रच्छादने तोयद: ।
क्रीडासद्म कलेर्विवेकशशिन: स्वर्भानुरापन्नदी-
सिन्धु: कीर्तिलताकलापकलभो लोभ: पराभूयताम् ॥५८॥

अर्थ—हे मनुष्यों ! अज्ञान रुपी विप वृक्ष की जो जड है पुण्यों के समुद्र के लिए अगस्तत्य ऋषि के समान है। क्रोध रुपी अग्नि को पैदा करने के लिए अरणि (एक जात का काष्ठ) मंथन

के समान है। तेज रूपी सूर्य देव की किरणों में जो बादल के समान है। पापरूपी कमल का दाहाम्पन (चन्द्र) है। ज्ञान रूपी चन्द्र को (ग्रहण के लिए) जो राहु के समान है। आपत्ति रूपी नदियों को (एक जगह इकट्ठा करने के लिये जो) समुद्र के तुल्य है। तथा प्रशंसा रूपी बेलड़ी का नाश करने में जो हाथी के बच्चे के समान समर्थ है। ऐसा लोभ सर्वदा त्याज्य है ॥ ५८ ॥

वसन्ततिलका वृत्त

निःशेषधर्मवनदाहविजृम्भमाणे,
दुःखौघभस्मनि विसर्पदकीर्तिधूमे ।
बाढं धनेन्धनसमागमदीप्यमाने,
लोभानले शलभतां लभते गुणौघः ॥ ५९ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण धर्म रूप वन को जलाने में उद्यत हुए। दुःख समूह रूप भस्म वाले। अपकीर्ति रूप धुएँ को फैलाने वाले तथा धन रूप ईंधन की प्राप्ति से दीप्यमान होने वाले। लोभरूप अग्नि समूह में गुणों का समूह निश्चय करके पतंगे का रूप होता है। अर्थात् लोभ रूपी अग्नि में गुण समूह जलकर भस्म हो जाता है ॥ ५९ ॥

शार्दूलविक्रीडित

जातः कल्पतरुः पुरः सुरगवी तेषां प्रविष्टा गृहं,
चिन्तारत्नमुपस्थितं करतलप्राप्तो निधिः सन्निधिम् ।

विश्वं वश्यमवश्यमेव सुलभाः स्वर्गापवर्गश्रियः,
ये संतोषमशेषदोषदहनध्वंसाम्बुदं बिभ्रते ॥ ६० ॥

अर्थ—जो मनुष्य संपूर्ण दोष अग्नि को बुझाने मे बादलो के समान संतोष को धारण करते हैं। उन मनुष्यो के मुख के सामने ही (मानो) कल्प वृक्ष पैदा हुआ है। घर मे काम धेनु ही (मानो) घुस पड़ी है। चिन्तामणि नाम का रत्न हथेली मे आया हुआ ही उसे उपलब्ध है। देवताओ का धन भंडार भी समीप में (आ गया है) सारा संसार उसके आधीन है तथा स्वर्ग और मोक्ष की लक्ष्मी निश्चय करके उसे सुप्राप्य है ॥ ५० ॥

---

(१४) सौजन्य प्रकरणम्

शिखरीणीवृत्त

वरं क्षिप्तः पाणिः कुपितफणिनो वक्त्रकुहरे,
वरं झम्पापातो ज्वलदनलकुण्डे विरचितः।
वरं प्रासप्रान्तः सपदि जठरान्तर्विनिहितो,
न जन्यं दौर्जन्यं तदपि विपदां सद्म विदुषा ॥ ६१ ॥

अर्थ—क्रोधित हुए साँप के मुख रूपी विल मे हाथ डालना अच्छा है। जलते हुए आग के कुंड में कूद पड़ना अच्छा है। भाले की अणी एकदम पेट मे घुसेड़नी अच्छी है। फिर भी

बुद्धिमान पुरुष को अनेक आपत्तिया का घर ऐसी दुष्टता नही करनी चाहिए ॥ ६१ ॥

वसन्ततिलकावृत्त

सौजन्यमेव विदधाति यशश्चय च,

स्वश्रेयस च विभव च भवक्षय च ।

दौर्जन्यमावहसि यत्कुमते तदर्थ,

धान्येऽनल क्षिपसि तज्जलसेकसाध्ये ॥ ६२ ॥

अर्थ—कीर्ति समूह का और आत्म कल्याण को धन सपत्ति को और ससार बधन के नाश को तो किसी के साथ भलमसी का व्यवहार भी कर देता है । फिर । हे कुमते । अरे ! दुष्ट बुद्धिवाले तू उपरोक्त वस्तुओ के लिए जो दुष्टता को धारण करता है । वह तो मानो पानी पिलाकर बढाने योग्य धान्य के खेत में आग को फेंकता है ॥ ६२ ॥

पृथ्वीवृत्त

वर विभववन्ध्यता सुजनभावभाजा नृणा–

मसाधुचरितार्जिता न पुनरूर्जिता सपद. ।

कृशत्वमपि शोभते सहजमायतौ सुन्दर,

विपाकविरसा न तु श्वयथुसभवा स्थूलता ॥ ६३ ॥

अर्थ—सज्जनता का सेवन करने वाले पुरुषो को धन रहित होना अच्छा लगता है । परन्तु बुरे आचरण से इकट्ठी की हुई

ऐसी कमाई हुई बडी बड़ी सम्पत्तियें भी अच्छी नही लगती हैं। भविष्यकाल में सुन्दर २ होने वाली ऐसी स्वाभाविक दुर्बलता भी शोभती है किन्तु भविष्य मे बुरा फल देने वाली सूजन से पैदा हुई शरीर की मोटाई नहीं शोभती है ॥ ६३ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्त

न ब्रूते परदूषणं परगुणं वक्त्यल्पमप्यन्वहं,
संतोषं वहते परर्द्धिषु पराबाधासु धत्ते शुचम् ।
स्वश्लाघां न करोति नोज्झति नयं नौचित्यमुल्लङ्घय-
त्युक्तोऽप्यप्रियमक्षमां न रचयत्येतच्चरित्रं सताम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—जो दूसरे पुरुषो की एबो को नही कहता है किन्तु थोड़ा भी हो दूसरे पुरुषों के गुणो को ही हमेशा कहता है। पराये की सपति पर सतोष को धारण करता है तथा पराये दुःखों मे सोच करता है। आत्म प्रशंसा को नही करता है। न्याय मार्ग को नही छोड़ता है। लायकी का उलघन नही करता है। बुरा वचन कह देने पर भी क्रोध को नही करता है। सत्पुरुषो का यही चरित्र है ॥ ६४ ॥

(१५) गुणिसङ्ग प्रकरणम्

शादू लविक्रीडितवत

धर्मं ध्वस्तदयो यशश्च्युतनयो वित्त प्रमत्त पुमा-
न्काव्य निष्प्रतिभस्तप शमदमैं शून्योऽल्पमेधा श्रु तम् ।
वस्त्वालोकमलोचनश्चलमना ध्यान च वाञ्छत्यसौ,
य सङ्ग गुणिनाविमुच्यविमति कल्याणमाकाङ् क्षति।६५।

अथ—जो पुरुप बुद्धि रहित होकर गुणवानो की सोपत को छोड आत्म कल्याण को चाहता है। वहा मानो निदयी वन धम को नितिभ्रष्ट हो इज्जत को आलसी वन धन को, निर्बु द्धि हो, साहित्य प्राप्तो को शम दम से रहित हो तपस्या को अल्प ज्ञानवाला वन शास्त्र को अधा हो वस्तुओ के देखने को चचल चित वन समाधि को चाहता है ॥ ६५ ॥

हरिणीवृत

हरति कुमतिं भिन्ते मोह करोति विवेकिताम्
वितरति रतिं सूते नीतिं ननोति विनोततताम ।
प्रथयति यशो धत्ते धर्मं व्यापोहति दुर्गतिं
जनयति नृणा किं नाभीष्ट गुणोत्तमसङ्गम ॥ ६६ ॥

अर्थ—गुण प्राप्ति के लिये उत्तम पुरुपा की सगति मनुष्यो के किस मनोरथ को पूण नही करती है याने सवही मनोरथों को पूर्ण करती है क्याकि वह खराब बुद्धि को नष्ट करती है।

अज्ञान को दूर करती है। ज्ञान को पैदा करती है। प्रेम को प्रदान करती है। न्याय को उपजाती है। नम्रता को फैलाती है। इज्जत को बढाती है। धर्म को पुष्ट करती और खराब गति को हटाती है ॥ ६६ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत

लब्धुं बुद्धिकलापमापदमपाकर्त्तुं विहर्तुं पथि,
प्राप्तुं कीर्तिमसाधुतां विधुवितुं धर्मं समासेवितुम् ।
रोध्धुं पापविपाकमाकलयितुं स्वर्गापवर्गश्रियं,
चेत्त्वं चित समीहसे गुणवतांसंङ्ग तदङ्गीकुरु ॥ ६७ ॥

अर्थ—रे मन यदि तू बुद्धि वैभव को पाना चाहता है, आपति को दूर करना चाहता है, सन्मार्ग मे विहार करना चाहता है, यश को पाने की इच्छा है, दुष्टता को दूर छोड़ने चाहता है, धर्म को सेवन करना चाहता है, पापो के परिणाम को रोकना चाहता है तथा स्वर्ग और मोक्ष की शोभा का अनुभव करना चाहता है। नो गुणवान पुरुषों की सौवत को स्वीकर कर ॥ ६७ ॥

हरिणीवृत

हिमति महिमाम्भोजे चण्डानिलत्युदयाम्वुदे
द्विरदति दयारामे क्षेमक्षमाभृति वज्रति ।
समिधति कुमत्यग्नौ कन्दत्यनोतिलतासु यः
किमभिलषतां श्रेयः श्रेयान् स निर्गुणिसङ्गमः ॥ ६८ ॥

अर्थ—जो निर्गुणी पुरुषों का संगम महिमारूप कमल के लिए बर्फ का आचरण करता है, उन्नतिरूप बादलों के लिए प्रचण्ड वायु का आचरण करता है, दयारूप बगीचे के लिए हाथी का आचरण करता है, कल्याण पहाड़ के लिए वज्र का आचरण करता है, कुमतिरूप आग के लिये ईंधन का आचरण करता है। तथा अन्यायरूप बेलों के लिए कन्द का आचरण करता है। वह निर्गुणियों का संगम पुरुषों का कल्याण चाहने वालों के पाला क्या कल्याणकारी है? नहीं कदापि कल्याण कारी नहीं है॥ ६८॥

---

(१६) इन्द्रियदमन प्रकरणम्

शार्दूलविक्रीडितवृत्त

आत्मानं कुपथेन निर्गमयितुं यः शूकलाश्वायते
कृत्याकृत्यविवेकजीवितहृतौ यः कृष्णसर्पायते।
यः पुण्यद्रुमखण्डखण्डनविधौ स्फूर्जत्कुठारायते
तं लुप्तव्रतमुद्रमिन्द्रियगणं जित्वा शुभंयुर्भव॥ ६९॥

अर्थ—जो इन्द्रियों का समूह आत्मा को खराब मार्ग में ले जाने को दुष्ट घोड़े के समान आचरण करता है, तथा कार्य अकार्य के ज्ञानरूपी जीवन का हरण करने में काले नाग का आचरण करता है, जो पुण्य रूप वृक्ष खण्ड के

तेज कुल्हाडे का आचरण करता है । तथा जिसने उस व्रत की मुद्रा को नष्ट की है ऐसे बलवान् इंद्रिय समूह को अपने काबू मे कर कल्याण युक्त हो जा ॥६९॥

शिखरिणीवृत

प्रतिष्ठां यन्निष्ठां नयति नयनिष्ठां विघटय-
त्यकृत्येष्वाधत्ते मतिमतपसि प्रेम तनुते ।
विवेकस्योत्सेकं विदलयति दत्ते च विपदं,
पदं तद्दोषाणां करणनिकुरम्बं कुरु वशे ॥ ७० ॥

अर्थ—जो इन्द्रिय समूह मनुष्य को इज्जत को नष्ट करता है, नीति के ध्यान को विच्छिन्न करता है, खराब कामों मे बुद्धि को लगाता है, तपस्या के भाव मे अर्थात नही तपस्या करने मे प्रेम प्रेम को फैलाता है, ज्ञान के उदय को रोकता है और आपति को प्रदान करता है। ऐसे उस अनेक दोषो के स्थान इंद्रिय समूह को अपने वश मे कर ॥ ७० ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत.

धत्तां मौनमगारमुज्झतु विधिप्रागल्भ्यमभ्यस्यता-
मस्त्वन्तर्गणमागमश्रममुपादत्तां तपस्त प्यताम् ।
श्रेयःपुञ्जनिकुञ्जभञ्जनमहावातं न चेदिन्द्रिय-
व्रातं जेतुमवैति भस्मनिहुतं जानीत सर्वं ततः ॥ ७१ ॥

अर्थ—हे मनुष्य चाहे तूं मौन व्रत को धारण करो घर को छोड़ दो। धर्म विधी की प्रगल्भता को सीखो। अन्दर पास करो

शास्त्राभ्यास को श्रवण करो। तपस्या को तपो परन्तु कल्याण के समूह रूप निकुञ्ज को नष्ट करने मे आंधी के समान इस इन्द्रिय समूह को जीतने को नही जानता है तो पूर्वोक्त इन सब बातों का राख मे होमे हुए के समान ही निष्फल जानो ॥ ७१ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्त

धर्मध्वंसधुरीणमभ्रमरसावारीणमापत्प्रथा-
लङ्कर्मीणमशर्मनिर्मितकलापारीणमेकान्ततः ।
सर्वान्नीनमनात्मनीनमनयात्यन्तीनमिष्टे यथा-
कामीनं कुपथाध्वनीनमजयन्नक्षौघमक्षेमभाक् ॥ ७२ ॥

अर्थ—धर्म का नाश करने मे मुख्य सत्य ज्ञान को ढकने वाले, आपत्ति को फैलाने वाले, अकल्याण को करने वाली कला मे पारगत एकान्ततया सर्वस्व खाने वाले आत्मा का अकल्याण करने वाले अनीति का पक्ष लेने वाले अपनी इच्छा से करने वाले कुमार्ग पर चलने वाले ऐसे इन्द्रिय समूह को यदि नही जीता है तो वह अपना भला करने वाला नही है अर्थात् बुरा करने वाला है ॥ ७२ ॥

---

(१७) लक्ष्मीस्वभाव प्रकरणम्

शार्दूलविक्रीडितवृत

निम्नं गच्छति निम्नगेव नितरां निद्रेव विष्कंभते,
चैतन्यं मदिरेव पुष्यति मदं धूम्येव धत्तेऽन्धताम् ।
चापल्यं चपलेव चुम्बति दवज्वालेव तृष्णां नय-
त्युल्लासं कुलटाङ्गनेव कमला स्वैरं परिभ्राम्यति ॥ ७३ ॥

अर्थ—लक्ष्मी नदी की तरह नीच पुरुष को ही प्राप्त होती है तथा निरंतर नींद की तरह समग्र ज्ञान आगमन की सूचना के लिए आगल का आचरण करती है, शराब के जैसे अभिमान को पुष्ट करती है, धुआँ के समूह की तरह मनुष्य को अंधा करती है, विजली की तरह चंचलता को पास रखती है, वन अग्नि के समान धनादिक की प्यास को पैदा करती है एवं, खराब स्त्री की तरह खुशी पूर्वक स्वतंत्र भटकती है। ॥ ७३ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत

दायादाः स्पृहयन्ति तस्करगणा मुष्णन्ति भूमीभुजो
गृह्णन्तिच्छलमाकलय्य हुतभुग्भस्मीकरोति क्षणात् ।
अम्भः प्लावयते क्षितौ विनिहितं यक्षा हरन्ते हठाद्
दुर्वृत्तास्तनया नयन्ति निधनं धिग्बह्वधीनं धनम् ॥ ७४ ॥

अर्थ—जिस धन की कुटुम्ब वाले इच्छा करते हैं, चोर चुरा कर ले जाते हैं राजा लोग कपट कर के हर लेते हैं, अग्नि क्षण

भर मे जला देती है। पानी बहा के ले जाता है । पृथ्वी मे रक्खा हुआ यक्ष लोग बलपूवक हर लेते हैं। दुष्ट बेटे नष्ट कर देते हैं। इस प्रकार के इस बहुत जनो के आधीन हुए धन को धिक्कार है। ॥ ७४ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत

नीचस्यापि चिर चटूनि रचयन्त्यायान्ति नीचैर्नोतिं,

शत्रोरप्यगुणात्मनोऽपि विदधत्युच्चैं गुणोत्कीर्तनम् ।

निर्वेद न विदन्ति किञ्चिदकृतज्ञस्यापि सेवाक्रमे,

कष्ट किं न मनस्विनोऽपि मनुजा कुर्वन्ति वित्तार्थिन ।७५।

अर्थ—धन चाहने वाले बुद्धिमान मनुष्य भी क्या २ कष्ट नही उठाते हैं अथवा सभी कष्ट उठाते है। जैसे कि नीच पुरुष के आगे भी चिरकाल तक मिथ्या स्तुति वाक्यो को बनाते है। नीचे झुक करके प्रणाम करते हैं। शत्रु हो तो भी तथा दुर्गुणी हो तो भी उसके गुणो की प्रशसा जोर से करत हैं तथा किये हुए उपकार को भूल जाने वाले का भी सेवा करने मे कुछ भी दुख को नही जानते हैं ॥ ७५ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत

लक्ष्मी सपति नीचमर्णवपय सङ्गादिवाम्भोजिनी–

मसर्गादिव कण्टकाकुलपदा न क्वापि धत्ते पदम् ।

चैतन्यं विषसन्निधेरिव नृणामुज्जासयत्यश्च वा
धर्मस्थाननियोजनेन गुणिभिर्ग्राह्यं तदस्याः फलम् ।७६।

अर्थ—समुद्र के पानी की संगति से ही मानो धन संपति नीच २ के पास सरकती है। तथा कमलिनी की सोबत से ही मानो कांटो से आक्रान्त पैरो वाली होकर कहीं पर भी पैर को नही रोकती है। जहर के ससर्ग से जैसे मनुष्यो के ज्ञान को झट नष्ट कर देती है। इस कारण से गुणवाले पुरुषो को धर्म कार्यों मे लगाकर इस लक्ष्मी का लाभ ग्रहण कर लेना चाहिए।

१८—दान प्रकरणम्

शार्दूलविक्रीडितवृत

चारित्रं चिनुते तनोति विनयं ज्ञानं नयत्युन्नतिं
पुष्णाति प्रशभ तपः प्रबलयत्युल्लासयत्यागमम् ।
पुण्यं कन्दलयत्यघं दलयति स्वर्गं ददाति क्रमा—
न्निर्वाणश्रियमातनोति निहितं पात्रे पवित्रं धनम् ।।७७।।

अर्थ—(सुपात्र) सत्पात्र में दिया हुआ अथवा सौंपा हुआ उत्तम धन चारित्र को इकट्ठा करता है याने उत्तम बनाता है। नम्रता को बढाता है। बुद्धि को उदय मार्ग पर ले जाता है। शांति को परिपुष्ट करता है। तपस्या को बलवान करता है।

शास्त्र नान को विकसत करता है धम को अंकुरित करता है पाप का विनाश करता है। स्वग को प्रदान करता है। मोक्ष की लक्ष्मी को मिला देता है ॥ ७७ ॥

शादू लविक्रीडितवृत्त

दारिद्य् न तमीक्षते न भजते दौगत्यमालम्बते,
नाकोर्तिन पराभवोऽभिलषते न व्याधिरास्कन्दति ।
दैन्य नाद्रियते दुनोति न दग क्लिश्नन्ति नैवापद
पात्रे यो वितरत्यनथदलन दान निदान श्रियाम् ॥७८॥

अथ—जो मनुष्य लक्ष्मीप्राप्ति के मुख्य कारण एव अन्याय को मिटाने वाले दान को सुपात्र मे प्रदान करता है। उस मनुष्य को गरीबी देख भी नही सकती है। खराब हालत उसकी हो नहीं सकती है। अपयश उसका आसरा ने नही सकता है। पराजय उसको चाहती नही हैं। बीमारी उसे थका नहीं सकती है। दुबलता उसका सग नही करती है। भय उसे दु खी नही कर सकता और आपत्तिएँ सता नही सकती है। ॥ ७८ ॥

शादू लविक्रीडितवत

लक्ष्मी कामयते मतिमृ गयते कीर्तिस्तमालोकते,
प्रीतिश्चुम्बति सेवते सुभगता नीरोगतालिङ्गति ।
श्रेय सहतिरभ्युपैति वृणुते स्वर्गोपभोगस्थिति-
मुं क्तिर्वाञ्छति य प्रयच्छति पुमान् पुण्यार्थमर्थं निजम्।७९।

अर्थ—जो पुरुष पुण्य कमाने के लिए अपने धन को दान देता है उस पुरुष की सम्पत्ति (लक्ष्मी) चाहती है। ज्ञान उसको खोजता है। यश उसकी तरफ देखता है। प्रेम उसका चुम्बन करता है। सौभाग्य उसको सेवता है। तन्दुरुस्ती उसका आलिंगन करती है। कल्याण समूह उसके पास आता है। स्वर्ग के भोगो की स्थिति उसे वर लेती है। तथा मोक्ष उसकी वाञ्छना करता है। ॥ ७९ ॥

मन्दाक्रान्तावृत्त

तस्यासन्ना रतिरनुचरी कीर्तिरुत्कण्ठिता श्रीः,
स्निग्धा बुद्धिः परिचयपरा चक्रवर्तित्वऋद्धिः।
पाणौ प्राप्ता त्रिदिवकमला कामुकी मुक्तिसंप-
त्सप्तक्षेत्र्यां वपति विपुलं वित्तबीजं निजं यः ॥८०॥

अर्थ—जो पुरुष सातो क्षेत्रो मे अपने प्रचुर धनरूप बीज को बोता है। उसके संतोष या प्रीति आठो पहर पास रहती है। प्रशंसा उसकी दासी होकर रहती है। लक्ष्मी उसके लिये लालायित होती है। ज्ञान विशुद्ध हो जाता है। साम्राज्य संपति उस पुरुष से परिचय बढाने लग जाती है। स्वर्गीय समृद्धि उसके करतल गत होती हैं। एव मोक्षलक्ष्मी भी उस पुरुष से उपभोग करने की इच्छा वाली हो जाती है ॥ ८० ॥

१९–तपप्रकरणम्

शार्दूलविक्रीडितवृत्त

यत्पूर्वार्जितकर्मशैलकुलिश यत्कामदावानल–
ज्वालाजालजल यदुग्रकरणग्रामाहिमन्त्राक्षरम् ।
यत्प्रत्यूहतम समूहदिवस यल्लब्धिलक्ष्मीलता–
मूल तद्विविध यथाविधि तप कुर्वीत वीतस्पृह ॥८१॥

अर्थ—जो पूर्व भव मे सचित किये गये कर्मरूपी पहाड के लिए वज्र के समान है। जो कामरूपी दावाग्नि की प्रचण्ड ज्वालाओं के शमनार्थ जलके समान है। जो अति भयकर इन्द्रिय समूहरूपी साप के उत्कीलन के लिए मत्राक्षर के समान है। जो विघ्नरूपी गाढान्धकार के लिए दिन के समान है तथा जो लब्धी रूपी लक्ष्मी लता की जड के समान है। उस तरह के तपस्या को यथाविधि नि स्पृह होकर करें ॥ ८१ ॥

शार्दूलविक्रीडितवत

यस्माद्विघ्नपरम्परा विघटते दास्य सुरा कुर्वते
कामः शाम्यति दाम्यतोन्द्रियगण कल्याणमुत्सर्पति ।
उन्मीलन्ति महर्द्धय कलयति ध्वस च य कर्मणा,
स्वाधीन त्रिदिव शिव च भवति तत्किं न श्लाघ्य तपस्तन्न किम् ॥८२

अर्थ—जिससे विघ्नो का समूह नाश होता है, देवता नौकरी करते हैं मदनज्वर नाश होता है इन्द्रियो के समूह

का दमन होता है, कल्याण फैलता है, बड़ी २ सम्पतियें विकसित होती है, तथा जो कर्मो का नाश करता है और जिससे स्वर्ग और मोक्ष स्वायत (स्वाधीन) होता है। वह तप क्या प्रशसनीय नही है। अपितु वह तप जरूर प्रशंसनीय है।८२।

शार्दू लविक्रीडितवृत

कान्तारं न यथेपरो ज्वलयितुं दक्षौ दवाग्नि विना,
दावाग्नि न यथापर. शमयितुं शक्तो विनाम्भोधरम्।
निष्णातः पवनं विना निरसितुं नान्यो यथाम्भोधरम्,
कर्मौघं तपसा विना किमपरो हन्तुं समर्थस्तथा।८३।

अर्थ—जिस तरह जगल को जलाने में दावानल के सिवाय दूसरा समर्थ नही है। जिस तरह दावानल को बुझाने मे बादलों के सिवाय दूसरा समर्थ नहीं है। जिस तरह बादलों को अलग करने मे वायु के सिवाय दूसरा चतुर नहीं है। वैसे ही कर्मो के समूह को तपस्या के सिवाय दूसरा कोई नाश करने को क्या समर्थ है? अथवा कोई नही। कर्म नाश तपस्या से होता है।८३।

स्त्रग्धरावृत्त.

संतोपः स्थूलमूलः प्रशमपरिकरस्कन्धबन्धप्रपञ्चः,
पञ्चाक्षीरोधशाखः स्फुरदभयदलः शीलसंपत्प्रवालः।
श्रद्धाम्भः पूरसेकाद्विपुलकुलबलैश्वर्यसौन्दर्यभोग-
स्वर्गादिप्राप्तिपुष्पः शिवपदफलदः स्यात्तपः कल्पवृक्षः।८४।

अर्थ—तपस्यारूप जो कल्पवृक्ष है, उसके सन्तोष तो प्रधान जड हैं। शान्ति के उपकरण है। वे गोड (तना) शाखा आदि का विस्तार है। पाच इन्द्रियो का रोध रोकना है वही छोटी मोटी डालिएँ हैं। खिलता हुआ जो अभयदान देना है, वही पत्र समूह है, शील को जो सपत्ति है, वही नवीन पत्तो का उद्गम है। श्रद्धा रूप जो अभ पूर पानी का प्रवाह उसके सोचने से ऊँचा घराना प्राप्त होता है। बल प्राप्त होता है। एश्वय मिलता है। सौंदय पाना, सासारिक विषय सुखो का भोगना तथा स्वर्गादि को प्राप्ति करना आदि जिसके पुष्प हैं एव मोक्षरूपी अप्राप्य उत्तम फलों को देने वाला है। ॥ ८४ ॥

२०–भावनाप्रकरणम्

शार्दूलविक्रीडितवृत्त

नीरागे तरुणीकटाक्षितमिव त्यागव्यपेतप्रभो ।
सेवाकष्टमिवोपरोपणमिवाम्भोजन्मनामश्मनि ।
विश्वग्वर्षमिवोपरक्षितितले दानार्हदर्चातप –
स्वाध्यायाध्ययनादि निष्फलमनुष्ठानं विना भावनाम्।८५।

अर्थ—रागरहित पुरुष पर किये गये युवती स्त्री के कटाक्ष की तरह देने मे कठोर कृपणमालिक की की गई नौकरी के समान पत्थर पर कमल के पौधा के उगाने के जसे ऊजड जमीन पर

चारो तरफ हुई वर्षा की तरह दान देना, जिनेन्द्र भगवान की पूजा करना, तपस्या करना, शास्त्रों का विचारना और पढ़ना आदि क्रियायें सब श्रद्धा भक्ति के बिना फिजूल है ॥ ८४ ॥

जैसे पानी पर उगने वाले कमलो को यदि पत्थर पर उगाया जाय तो कमल तो उगने दूर रहे उल्टा परिश्रम भी व्यर्थ जाता है। तथा जैसे खारी जमीन पर कोई घास आदि तो उगता नही और उस पर यदि बरसा होवे तो व्यथ ही जाती है। वैसे ही यदि जिस पुरुष के दिल मे श्रद्धा भक्ति न हो तो फिर उसका दिखावे मात्र के लिए दान देना, पूजा पढ़ाना, तपस्या करना आदि सत्कार्य भी व्यर्थ ही हैं। अर्थात् यथार्थ फलदायी नही होते ॥ ८५ ॥

सारांश—जिस प्रकार जितेन्द्रिय पुरुष के पास जाके स्त्री विषय याचना करे तो उल्टा उसे ही शर्मिदा होना पड़ता है, जसे जो स्वामी अपने नौकरो को पूरी तनख्वाह न दे और उसकी जो कोई नौकरी करे तो नौकरो को खाली दुःख ही होता है।

शार्दूलविक्रीडितवृत

सर्वं जोप्सति पुण्यमीप्सति दयां धित्सत्यघं भित्सति,
क्रोधं दित्सति दानशीलतपसां साफल्यमादित्सति।
कल्याणोपचयं चिकीर्षति भवाम्भोधेस्तटं लिप्सति,
मुक्तिस्त्रीपरिरिप्सते यदि जनस्तद् भावयेद् भावनाम्।८६।

अर्थ—अगर मनुष्य सब विषयो को जानना चाहता है, धर्म को इच्छता है, दया को धारण करना चाहता है पाप को दूर करना चाहता है गुस्से को दूर करना चाहता है दान शील और तपस्या की सफलता को पाना चाहता है कल्याण की वृद्धि को करना चाहता है, भवसागर के पैलो तीर को जाने की चाहना करता है। तथा मुक्ति प्राप्ति रूप स्त्री को आलिंगन करना चाहता है तो श्रद्धाभक्ति को अपने दिल मे भावित करे ॥ ८६ ॥

पृथ्वीवृत्त

विवेकवनसारिणी प्रशमशसजीवनी,

भवार्णवमहातरी मदनदावमेघावलीम् ।

चलाक्षमृगवागुरा गुरुकषायशैलाशनि,

विमुक्तिपथवेसरी भजत भावना किं परै ? ॥८७॥

अर्थ—विवेक रूपी वन मे अतिवेग से बहने वाली नदी के समान शांति और सुख को पदा करने वाली संसार रूपी समुद्र को पार लगाने वाली बडी जहाज के समान, कामरूपी दावाऽनल को बुझाने में मेघ घटा के समान, चचल इन्द्रिय रूपी हरिणो को रोकने लिए वागुरा के समान, बडे २ कषायरूपी पहाडो के लिए

वज्र के समान, मोक्ष मार्ग में ले जाने के लिए घोड़े के समान, श्रद्धाभक्ति को ही अपने दिल मे धारण करो। अन्याय साधनो मे क्या प्रयोजन है ? अर्थात् कुछ नही भावना ही सबसे बढकर है ॥ ८७ ॥

शिखरीणीवृत्त

घनं दत्तं वित्तं जिनवचनमभ्यस्तमखिलं,

क्रियाकाण्डं चण्डं रचितभवनौ सुप्तमसकृत् ।

तपस्तीव्रं तप्तं चरणमपि जीर्णं चिरतर,

न चेच्चित्ते भावस्तुपवपनवत्सर्वमफलम् ॥८८॥

अर्थ—यद्यपि मनुष्य ने जन्म मे ज्यादा धन का दान दे दिया, सम्पूर्ण जैन शास्त्रो को पढ लिया इस अति उग्र धर्म क्रिया को सपादिन किया। चिरकाल तक जमीन पर शयन किया कठिन तपस्या तपी, बहुत समय तक चारित्र का पालन किया परन्तु हृदय मे भावना नही है ता उपयुक्त ये सारी बातें खेत मे फूस उगाने के समान फिजूल है। जिस तरह खेत मे खूब हल जोते, अच्छा खाद भी डाला पर बीज को जगह तुप (धान का छिलका मात्र) लगा दे तो उगता नही और केवल जोताई व बोवाई मे तकलीफ पड़ती है। इसी तरह भावना विना ये सारी बातें फिजूल हैं ॥ ८८ ॥

२१–वैराग्यप्रकरणम्

हरिणीवृत्त

यदशुभरज पाथो दृप्तेन्द्रिरदाङ्कुश,
कुशलकुसुमोद्यान माद्यन्मन करिश्रृङ्खला ।
विरतिमणीलालवेश्म स्मरज्वरभेपज,
शिवपथरयस्तद् वैराग्य विमृश्य भवाभय ॥८९॥

अर्थ—जो अ मागलिक धूल को धोने के लिए जल के समान है, वलवान होने से स्वतत्र हुई इन्द्रियो के समूह रूप हाथी को वश करने में अकु श के समान है, कल्याण रूप पुष्पो का वगीचा है, उ मत हाथी को वाँधने के लिए साकल के समान है, विरक्तिरूप सु दरो का मानो क्रीडा घर है, कामज्वर का अमाघ औषध है तथा मोक्षमाग में ले जाने के लिए रथ के समान है। उस वराग्य को हे भाविकजन ! तू धारण कर (विचार कर) निभय होजा ॥ ८९ ॥

वसन्ततिलकावृत

चण्डानिल स्फुरतमब्दचय दवार्चि–
वृ॑क्षव्रज तिमिरमण्डलमर्कबिम्बम् ।
वज्र महोध्रनिवह नयते यथान्त,
वराग्यमेकमपि कम तथा समग्रम ॥९०॥

अर्थ—जैसे भयंकर हवा आकाश मण्डल मे विचलित हो वादलों को घटा को विखेर देती है, जगल की अग्नि वृक्षों के समूह को जला देती है, आँधी का भयंकर गोट सूर्यविंव को छिपा देता है, वज्र पर्वतकुल को तोड़ देता है। वैसे ही एक भी विरक्तिपरण (वैराग्यपरणा) सपूर्ण कर्मजाल को विनष्ट कर देता है ॥ ९० ॥

शिखरिणीवृत

नमस्या देवानां चरणवरिवस्या शुभ गुरो-

स्तपस्या नि.सीमक्लमपद मुपास्या गुणवताम् ।

निषद्यारण्ये स्यात्करणोदमविद्या च शिवदा,

विरागः क्रूरागः क्षपणनिपुणोन्तः स्फुरति चेत् ॥९१॥

अर्थ—यदि भयंकर अपराधो को मिटाने वाला वैराग्य अन्तः करण में विराजमान है, तो देवताओं को किया हुआ नमस्कार, अच्छे गुरु के पैरो की सेवा, अपार दुखों वाली तपस्या, गुणवानों की संगति, वन मे वैठना, तथा इन्द्रियों का निग्रह, ये सब मोक्ष देने वाले होते हैं ॥ ९१ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत

भोगान् कृष्णभुजङ्गभोगविषमान् राज्यं रजःसन्निभं,

वन्धून वन्धनिवन्धनानि विषयग्रामं विषान्नोपमम् ।

भूतिं भूतिसहोदरां तृणतुलं स्त्रैणं विदित्वा त्यज-
स्तेष्वासक्तिमनाविलो विलभते मुक्तिं विरक्तः पुमान्॥९२॥

अर्थ—इन्द्रियों के सुखों को श्याम सर्प के समान भयकर जानकर, राजलक्ष्मी को रेत के तुल्य जानकर, कुटुम्बियों को बन्धन के कारण जानकर, इन्द्रिय समूह को जहरीले अन्न के समान जानकर, ऐश्वर्य को राख के सदृश जानकर, स्त्री समूह को तिनके के समान जानकर, उक्त विषयों के प्रेम को छोड़ता हुआ, निष्पाप और विरक्त चित्तवाला पुरुष मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ९२ ॥

अथ मनुष्य जन्म रूप वृक्ष के फल

उपजातिवृत्त

जिनेन्द्रपूजा गुरुपर्युपास्तिः सत्त्वानुकम्पा शुभपात्रदानम् ।
गुणानुरागः श्रुतिरागमस्य, नृजन्मवृक्षस्य फलान्यमूनि॥९३॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान की पूजा, गुरुचरणों की सेवा, प्राणिमात्र पर दया, सत्पात्र को दान देना, सद्गुणों पर प्रेम

रखना, तथा शास्त्रों पर श्रद्धा रखना। ऊपर की ये बातें इस मनुष्य जन्मरूपी वृक्ष के फल है ॥ ६३ ॥

सामान्य उपदेश

शिखरिणीवृत.

त्रिसन्ध्यं देवार्चां विरचय चयं प्रापय यशः,
श्रियः पात्रे वापं, जनय नयमार्गं नय मनः।
स्मरक्रोधाद्यारीन् दलय कलय प्राणिषु दयां,
जिनोक्तं सिद्धान्तं शृणु वृणु जवान्मुक्तिकमलाम् ॥६४॥

अर्थ—हे भविकजन प्रातः मध्यान्ह, और सायं तीनो काल में भगवान की पूजा को कर, यश को प्राप्त कर, सुपात्र मे लक्ष्मी का खर्च कर, चित्त को न्याय के मार्ग पर लेजा, काम क्रोध आदि शत्रुओ का नाश कर तथा जीवों पर दया कर, सर्वज्ञ जिनेश्वर भगवान के कहे हुए सिद्धान्तों को सुन एवं जल्दी से मोक्षलक्ष्मी को वरो ॥ ६४ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत

कृत्वार्हत्पदपूजनं यतिजनं नत्वा विदित्वागमं,
हित्वा सङ्गमधर्मकमठधिया, पात्रेषु दत्त्वा धनम् ।
गत्वा पद्धतिमुत्तमक्रमजुषा जित्वान्तरारिव्रजं,
स्मृत्वा पञ्चनमस्क्रिया कुरु करक्रोडस्थमिष्टं सुखं ॥६५॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान की चरण सेवा को करके, साधु समुदाय को नमस्कार करके, शास्त्रों को पढ़कर के, पापियों की संगति छोड़कर के, सुपात्र मे धनदान देकर के सन्मार्ग जाने वाले महात्माओं के मार्ग पर जाकर के अन्त शत्रुओं को जीत कर के पचपरमेष्ठी नमस्कार मंत्र को करके, वाछित सुख को हथेली में स्थित करो ॥ ६५ ॥

हरिणीवृत

प्रसरति यथा कीर्तिर्दिक्षु क्षपाकरसोदरा–
भ्युदयजननी याति स्फीतिं, यथा गुणसन्ततिः ।
कलयति यथा वृद्धिं धर्मं कुकर्महतिक्षमं,
कुशलभुशले न्याय्ये कार्यं तथा पथि वर्तनम् ॥ ६६ ॥

अर्थ—सज्जनों को चाहिये कि कल्याण से सुप्राप्य नीति के मार्ग पर उस तरह चलना चाहिये जिससे चन्द्रमा के समान उज्जवल चारों दिशाओं में फैलता है, तथा उन्नति का कारण ऐसो गुणश्रेणि विकास को प्राप्त होती है और दुष्कर्मो को दूर करने में समर्थ ऐसा पुण्य बढता है ॥ ६६ ॥

महापुरुषों के आभूषण

शिखरिणीवृत्त

करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणमनं,
मुखे सत्या वाणी श्रुतमविगतं च श्रवणयोः ।
हृदि स्वच्छावृत्तिर्विजयि भुजयोः पौरुषमहो,
विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम् ॥ ६७ ॥

अर्थ— अहो ! यह आश्चर्य की बात है कि बिना धन संपत्ति के भी स्वभाव से ही महान् आत्मा वाले पुरुषों का यह नीचे लिखा हुआ वर्णन शृंगार है तथा हाथो मे तो प्रशंसनीय दान देने की प्रवृत्ति है । मस्तक पर (मुकुट की जगह) बड़े

लोगो को प्रणाम करने की प्रवृति है, मुख मे स्वर्ण कीलिकाओ के स्थान पर सच बोलने की प्रवृति है, कानो में कुण्डलो की एवज मे' शास्त्र सुनने की प्रवृति है, हृदय मे हार के बदले मे' निर्मल भावना है तथा भुजाओ पर भुजबन्द की जगह जयशील पुरुषार्थ है। ये महात्माओ के सच्चे आभूषण हैं ॥ ९७ ॥

विषयत्याग

शिखरिणीवृत्त

भवारण्य मुक्त्वा यदि जिगमिषुर्मुक्तिनगरी,
तदानीं माकार्षीविषयविषवृक्षेषु वसतिम् ।
यतश्छायाप्येषा प्रथयति महामोहमचिरा-
दय जन्तुर्यस्मात्पदमपि न गन्तु प्रभवति ॥ ९८ ॥

अर्थ—हे भविजन ! अगर तू ससार रूपी गहन वन को छोडकर मोक्ष नगर मे जाने की इच्छा वाला है तो इन्द्रिय भोगरूपी जहरीले पेडों पर मुकाम मत कर क्योंकि यह विषयो की छाया भी क्षण मे ही भयकर मूर्च्छा मे फसाती है और

जिससे यह प्राणी एक पैर भी आगे चलने को समर्थ नही हो सकता ॥ ९८ ॥

ग्रंथकर्ता का नाम और इस ग्रंथ के उपदेश का फल—

उपजातिवृत्त

सोमप्रभचार्यमभा च लोके, वस्तुप्रकाशं कुरुते यथाशु ।
तथायमुच्चैरुपदेशलेश:, शुभोत्सवज्ञानगुणांस्तनोति ।९९।

अर्थ—जिस तरह शीघ्र ही ससार मे चन्द्रमा की कान्ति और सूर्य की कान्ति प्रत्येक वस्तु को दिखाती है। तथा वैसे ही या थोड़ा सा उपदेश वड़े २ अच्छे २ कल्याणकारी ज्ञान गुणों को हृदय मे विस्तृत करता है। इस मे कवि ने अपना नाम सोमप्रभाचार्य यह भी प्रकट कर दिया है ॥ ९९ ॥

प्रशस्ति

मालिनीवृत

अभजदजितदेवाचार्यपट्टोदयाद्रि—
द्युमणिविजयसिंहाचार्यपादारविन्दे ।

मधुकरसमता यस्तेन सोमप्रभेण

व्यरचि मुनिपनेना सूक्तिमुक्तावलीयम् ॥ १०० ॥

अर्थ—जो श्री अजितदेव आचार्य से पट्ट आसन रूप सुमेरु पहाड पर सूर्य के जसे विजसिंह आचार्य के चरण कमलो मे भ्रमर भाव को सेवते थे। उन मुनियो के मान्य सोमप्रभाचार्य ने यह सुक्ति रूप मोतियो की माला बनाई है ॥ १०० ॥



प्राप्ति स्थान :

२. श्री गोविन्दचन्द मेहता

गृहपति

श्री श्वेताम्बर जैन छात्रावास

मु० पो० गुढाबालोतान

स्टेशन जवाईबाध (राज०)